वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 293

सरस्वती की प्रतिमूर्ति

गणिनी ज्ञानमती माताजी

–लेखिका –

पूज्य आर्यिका श्री आदिमती माताजी

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की 53वीं आर्यिका दीक्षा जयन्ती–वैशाख कृ. दूज, 22 अप्रैल 2008 के शुभ अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 280236

Website : www.jambudweep.org

E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

प्रथम संस्करण	वैशाख कृ. दूज	मूल्य
1100 प्रतियाँ	22 अप्रैल 2008	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

वर्तमान युग कम्प्यूटर व इन्टरनेट का युग है जिसके माध्यम से हम आज घर बैठे देश-विदेश में हो रही प्रत्येक गतिविधि के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। फिर भी लोगों में आज भी साहित्य के पढ़ने में रुचि बनी हुई है। उनमें भी विशेषकर संस्कारों को प्राप्त करने हेतु प्राचीन महापुरुषों के विषय में जानकर उनके जीवन से प्रेरणा लेने की दृष्टि से सत्साहित्य का विशाल स्तर पर प्रकाशन हो रहा है। हमारे देश में महापुरुषों के साथ-साथ अनेक नारियों ने भी अपने जीवन में ऐसे अनेक महान कार्य किये हैं जिससे देश का मस्तक सदैव ऊँचा रहे। प्राचीन नारियों में जहाँ सती सीता, मनोरमा, अंजना, द्रौपदी ने अपने शील के प्रभाव से नारी जाति का गौरव बढ़ाया है, वहीं ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दना आदि ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर क्वांरी कन्याओं के रूप में जिनदीक्षा धारणकर अपने कुल को उज्ज्वल किया है।

वर्तमान में बीसवीं सदी में ऐसी ही एक कन्या के रूप में जन्म लेकर आर्यिका दीक्षा धारण कर पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने जैनधर्म की पताका को फहराकर क्वांरी कन्याओं के लिए पुनः उस मार्ग को प्रशस्त किया है। उन्होंने सर्वप्रथम साहित्य लेखन कर नारी की गरिमा को वृद्धिंगत किया है। तीर्थोद्धार, तीर्थनिर्माण, साहित्यसृजन, जिनधर्म प्रभावना आदि अनेक कार्यों की प्रेरणास्रोत पूज्य माताजी के जीवनवृत्त पर लेखनी चलाना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है। पूज्य माताजी ने स्वयं अपने द्वारा ''मेरी स्मृतियाँ'' पुस्तक का लेखन कर अपने जीवन के अनेक संघर्षमयी व खट्टे-मीठे अनुभवों को प्रस्तुत किया है जिन्हें पढ़कर रोमांच होता है। पुनः उनकी शिष्या पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने उनके सर्वतोमुखी जीवन पर लेखनी चलाकर ''चारित्रचन्द्रिका'' ग्रंथ हम लोगों को प्रदान किया है और भी कई लघु पुस्तकें, पूज्य माताजी के जीवन से संबंधित संस्थान द्वारा प्रकाशित की गई हैं।

उन्हीं में से पूज्य माताजी की एक पुरानी शिष्या पूज्य आर्यिका श्री आदिमती माताजी ने भी उनके सानिध्य में रहकर जो उनके जीवन को साक्षात् देखा है उसे अपनी लेखनी के माध्यम से निबद्धकर ''सरस्वती की प्रतिमूर्ति'' पुस्तक के माध्यम से प्रस्तुत कर उनके प्रति विनयांजलि प्रस्तुत की है। हमें ''वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला'' से इस पुस्तक को प्रकाशित करने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है। पूज्य माताजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर आप भी अपने जीवन का उत्थान करें, यही मंगलभावना है।

प्रस्तावना

–ब्र. कु. चन्द्रिका जैन (संघस्थ)

बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवंत करने वाले चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज हुए जिन्होंने उत्कृष्ट संयम एवं तपश्चर्या के द्वारा अपने जीवन को इस प्रकार प्रकाशित किया जो हमारे लिए आने वाले समय में प्रेरणा प्रदान करने वाला है। कठोर तपश्चर्या एवं चारित्रपालन करने के साथ ही मुनि परम्परा को वृद्धिंगत करने हेतु व भव्यजीवों को कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए संयम धारण करने का उपदेश दिया जिससे अनेक भव्यात्माओं ने उनके समक्ष जैनेश्वरी दीक्षा धारणकर ऐसे महान गुरु का शिष्यत्व स्वीकार कर आत्मकल्याण किया। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने मूलाचार में आचार्य का कर्तव्य बताते हुए लिखा भी है–

दंसणणाणुवदेसो, सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणां, जिणिंदपूजोवदेसो य।।

जो शिष्यों का संग्रह और उनके ऊपर अनुग्रह करने में कुशल हैं, सूत्र और उसके अर्थ में विशारद हैं, कीर्तिमान हैं, क्रिया और आचरण से युक्त हैं, जिनके वचन प्रमाणीभूत हैं और जिन्हें सब मानते हैं ऐसे आचार्य होते हैं। उक्त गुण उन चारित्र-चक्रवर्ती गुरु में पूर्णरूपेण विद्यमान थे। उनके प्रथम पट्टशिष्य आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज हुए जिन्होंने अपना सर्वस्व उन गुरु के चरणों में समर्पित कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था और अपने गुरु के पदचिन्हों पर चलकर तपश्चर्या व ज्ञान का अर्जन कर कुशलतापूर्वक संघ का संचालन किया। उन्होंने बीसवीं सदी में सर्वप्रथम अपने करकमलों से बालब्रह्मचारिणी कन्या को आर्यिका दीक्षा प्रदान कर ब्राह्मी व चंदनबाला के युग की परम्परा को पुनः जीवंत किया। वही कन्या आज हमारे समक्ष पूनो के चांद की तरह अपनी ज्ञान ज्योति से संपूर्ण विश्व को प्रकाशित कर जगत माता के रूप में विद्यमान है जिनका नाम है-पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी। जिन्होंने अपने गुरु के दिये हुए नाम को अपने जीवन में साकारकर यथानाम तथागुणरूप कार्य किये हैं। पूज्य माताजी ने ज्ञानार्जन कर विपुल साहित्य सृजन किया, जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से ओतप्रोत होकर अनेक पूजा-विधानों की रचना कर भक्तों के लिए भक्तिमार्ग प्रशस्त किया, जिनधर्म एवं संस्कृति की रक्षा हेतु तीर्थों का उद्धार कराया,

जिनशासन की प्राचीनता को जनमानस तक पहुँचाने हेतु ज्ञानज्योति के माध्यम से ज्ञान का अलख जगाने की प्रेरणा प्रदान की। न जाने कितने अद्भुत-अद्वितीय कार्यों के द्वारा पूज्य माताजी ने हम पर उपकार किये हैं जिनसे हम कभी उऋण नहीं हो सकते। इन्हीं की कृपा से आज सैकड़ों की संख्या में क्वांरी कन्याएं इस त्यागमार्ग को अपनाकर आत्मकल्याण कर रही हैं। भगवान महावीर के पश्चात् 2600 वर्षों के इतिहास में प्रथम महिला साध्वी के रूप में ग्रंथ लेखन कर नारी जाति का गौरव बढ़ाया है। पठन-पाठन के साथ ही त्याग की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए अनेक शिष्य-शिष्याओं को वैराग्य मार्ग हेतु प्रेरित किया जिनमें प्रथम कु. प्रभावती जैन-म्हसवड़ (महा.) को प्रेरणा देकर बड़े प्रयत्नों से घर से निकाला, जो आर्यिका श्री जिनमती माताजी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। माताजी को अपने जीवन में हर कार्य के लिए संघर्ष करना पड़ा, पर इन्होंने कभी इससे घबराकर हार नहीं मानी। सर्वप्रथम गृहत्याग के समय और बाद में शिष्यों को घर से निकालने में, तीर्थ निर्माण, साहित्य लेखन आदि सभी कार्यों में विघ्नसंतोषी जीवों ने इन्हें रोकने की कोशिश की, पर ये अपने निर्णयों पर सदैव अटल रहीं तभी हमें आज ये अमूल्य निधियाँ प्राप्त हुई हैं। उन्हीं प्राथमिक शिष्याओं में वर्तमान में पूज्य आर्यिका श्री आदिमती माताजी हैं जिन्हें पूज्य माताजी ने घर से निकालकर ज्ञान व चारित्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी क्योंकि जिस व्यक्ति के पास जो होता है, वही वह दूसरों को प्रदान करता है, आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है–

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः।।23।।

अज्ञानी के आश्रित रहने पर अज्ञान की तथा ज्ञानी के समीप रहने से ज्ञान की प्राप्ति होती है अर्थात् जो जिसके पास है वह वही देगा, यह सूक्ति जग में प्रसिद्ध है। इस सूक्ति के अनुसार पूज्य माताजी ने हमेशा अपने पास रहने वालों को ज्ञान का अमृत पिलाकर अभिसिंचित किया है। पूज्य आर्यिका श्री आदिमती माताजी ने भी सन् 1960-1961 से पूज्य माताजी के साथ रहकर उनके प्रत्येक क्रियाकलापों को समीप से देखा है उन्होंने अपनी गुरु पूज्य माताजी के प्रति अपनी शब्दरूप विनयांजलि अर्पित करने की भावना से उनके प्रारंभिक जीवन परिचय व संघ में रहकर साक्षात् देखे प्रकरणों को लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया है। सरस्वती स्वरूप माँ के लिए "सरस्वती की प्रतिमूर्ति" नाम से इस पुस्तिका

का लेखन कर हमें प्रदान किया है। ऐसी महान विभूति के जीवनवृत्त को पढ़कर उनके गुणों के कुछ अंश भी यदि हम अपने जीवन में ग्रहण करेंगे तो इस भवसमुद्र से पार होने में देर नहीं लगेगी। जिनका जीवन तो स्वयं एक चलता-फिरता ग्रंथ है, जिनका हर क्षण अमूल्य प्रेरणा प्रदान करने वाला है, उन चेतन ग्रंथस्वरूप पूज्य गणिनी माताजी के जीवन के कुछ पृष्ठों को पूज्य आदिमती माताजी ने अपनी लेखनी से निबद्ध कर हमें प्रदान किया है। यह कृति हमारे जीवन में एक नई ज्योति को जगाने में माध्यम बने, यही मंगलभावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों और युगों-युगों तक हमें अपना आशीष प्रदान करती रहें यही प्रभु चरणों में विनम्र प्रार्थना है। पूज्य आर्यिका श्री आदिमती माताजी, जिन्होंने ऐसी महान गुरु का सामीप्य पाकर अपने जीवन को धन्य किया है उनके प्रति भी विनम्र वंदामि करते हैं। वे भी स्वस्थ रहकर जिनधर्म की प्रभावना कर भव्यों का मार्गदर्शन करें, यही मंगलकामना है। अंत में–

'सरस्वती की प्रतिमूर्ति माँ', ज्ञान गुणों की खान।
नारी जगत ने तुमसे पाया, जग में सत् सन्मान।।

G G G G G

का लेखन कर हमें प्रदान किया है। ऐसी महान विभूति के जीवनवृत्त को पढ़कर उनके गुणों के कुछ अंश भी यदि हम अपने जीवन में ग्रहण करेंगे तो इस भवसमुद्र से पार होने में देर नहीं लगेगी। जिनका जीवन तो स्वयं एक चलता-फिरता ग्रंथ है, जिनका हर क्षण अमूल्य प्रेरणा प्रदान करने वाला है, उन चेतन ग्रंथस्वरूप पूज्य गणिनी माताजी के जीवन के कुछ पृष्ठों को पूज्य आदिमती माताजी ने अपनी लेखनी से निबद्ध कर हमें प्रदान किया है। यह कृति हमारे जीवन में एक नई ज्योति को जगाने में माध्यम बने, यही मंगलभावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों और युगों-युगों तक हमें अपना आशीष प्रदान करती रहें यही प्रभु चरणों में विनम्र प्रार्थना है। पूज्य आर्यिका श्री आदिमती माताजी, जिन्होंने ऐसी महान गुरु का सामीप्य पाकर अपने जीवन को धन्य किया है उनके प्रति भी विनम्र वंदामि करते हैं। वे भी स्वस्थ रहकर जिनधर्म की प्रभावना कर भव्यों का मार्गदर्शन करें, यही मंगलकामना है। अंत में–

'सरस्वती की प्रतिमूर्ति माँ', ज्ञान गुणों की खान।
नारी जगत ने तुमसे पाया, जग में सत् सन्मान।।

G G G G G

आभार

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 53वें आर्यिका दीक्षा दिवस के शुभ अवसर पर प्रकाशित इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री जगदीश प्रसाद अशोक कुमार जैन, जे.पी. ज्वैलर्स-बड़ौत (बागपत-उ.प्र.) ने ज्ञानदानस्वरूप अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया, एतदर्थ संस्थान उनके प्रति आभार व्यक्त करता है।

–सम्पादक

दो शब्द

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका परमपूज्य 105 आर्यिकारत्न श्री आदिमती माताजी वर्तमान आर्यिका परम्परा में एक वरिष्ठ आर्यिका हैं। इन्होंने पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रबल प्रेरणा से गृहत्याग करके अपने बालवैधव्य जीवन को वरदान बनाया और सन् 1959 से पूज्य माताजी के सानिध्य में ज्ञानार्जन करते हुए सन् 1962 में उन्हीं की पावन प्रेरणा से आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज से नारीजीवन के चरमलक्ष्य को सिद्ध कराने वाली आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद भी गुरुमुख से प्राप्त ज्ञानामृत का पान करते हुए आपने गोम्मटसार कर्मकाण्ड का हिन्दी अनुवाद करके पूज्य ज्ञानमती माताजी की हार्दिक इच्छा को परिपूर्ण किया।

इसी प्रकार समय-समय पर रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि कतिपय अन्य ग्रंथों की हिन्दी टीका करके भी जैन वाङ्मय की सेवा की है। सन् 1974 तक आप लगातार अपनी गुरुमाता पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के पास रहीं पुनः सन् 1988 तक आचार्य श्री धर्मसागर महाराज एवं आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर महाराज के संघ में रहकर श्रुताराधना एवं रत्नत्रय साधना की है। वर्तमान में अपने आर्यिका संघ का संचालन करते हुए राजस्थान प्रांत में आपका प्रवास हो रहा है।

कितनी भी दूर रहते हुए आपके हृदय में सदैव अपनी मूलगुरु पूज्य ज्ञानमती माताजी के प्रति समर्पण एवं गुरुत्वभाव रहता है। इसी कारण आपने ''सरस्वती की प्रतिमूर्ति-गणिनी ज्ञानमती माताजी'' नामक यह पुस्तक लिखकर हमें प्रदान किया है। दीर्घकाल से प्रत्यक्ष अनुभव किये गये कार्यकलापों का इसमें आपने संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। इसमें वर्णित विषयों का विशेष स्पष्टीकरण जानने के लिए पाठकों को पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखी गई ''मेरी स्मृतियाँ'' ग्रंथ का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

हमारे गुरुभक्त श्रद्धालु पाठकगण इस पुस्तक को पढ़कर पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के सर्वोदयी व्यक्तित्व से परिचित हों तथा उनके गुणों के कुछ अंश ग्रहण कर अपने जीवन को समुन्नत बनावें, यही मंगलकामना है।

G G G G G

राष्ट्रगौरव, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान : टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि : आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991(सन् 1934)
गृहस्थ का नाम : कु. मैना
माता-पिता : श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत : ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से।
क्षुल्लिका दीक्षा : चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में
आर्यिका दीक्षा : वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व : अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा : हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तीर्थ का निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) विकास की प्रेरणा, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा।

महोत्सव प्रेरणा : पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव ।

शैक्षणिक प्रेरणा : 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा : जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के दीक्षित जीवन के 55 चातुर्मास

सन् 1953 में क्षुल्लिका दीक्षा लेकर प्रथम चातुर्मास तो दीक्षा गुरु भारतगौरव आचार्य श्री देशभूषण महाराज के साथ जन्मभूमि टिकैतनगर में हुआ, पुनः सन् 1954 का जयपुर में एवं सन् 1955 का म्हसवड़ (महा.) में सम्पन्न हुआ।

पुनः सन् 1956 में आर्यिका दीक्षा लेकर पूज्य माताजी केसन् 2007 तक 52 चातुर्मास विभिन्न स्थानों पर हुए हैं, जिनके नाम यहाँ एक दृष्टि में प्रस्तुत हैं–

स्थान	वर्ष	स्थान	वर्ष
क्षुल्लिका दीक्षा के 3 चातुर्मास		28. दिल्ली (कूचासेठ)	-1980
1. टिकैतनगर (उ.प्र.)	-1953	29. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1981
2. जयपुर (राज.)	-1954	30. दिल्ली (कम्मो जी धर्मशाला)	-1982
3. म्हसवड़ (महा.)	-1955	31. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1983
आर्यिका दीक्षा के 52 चातुर्मास		32. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1984
4. जयपुर (खानिया)	-1956	33. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1985
5. जयपुर (खानिया)	-1957	34. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1986
6. ब्यावर (राज.)	-1958	35. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1987
7. अजमेर (राज.)	-1959	36. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1988
8. सुजानगढ़ (राज.)	-1960	37. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1989
9. सीकर (राज.)	-1961	38. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1990
10. लाडनूँ (राज.)	-1962	39. सरधना (मेरठ-उ.प्र.)	-1991
11. कलकत्ता (पं. बंगाल)	-1963	40. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1992
12. हैदराबाद (आंध्रप्रदेश)	-1964	41. अयोध्या	-1993
13. श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)	-1965	42. टिकैतनगर	-1994
14. सोलापुर (महाराष्ट्र)	-1966	43. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1995
15. सनावद (मध्यप्रदेश)	-1967	44. मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र (महा.)	-1996
16. प्रतापगढ़ (राज.)	-1968	45. लाल मंदिर-दिल्ली	-1997
17. जयपुर (राज.)	-1969	46. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-1998
18. टोंक (राज)	-1970	47. दिल्ली (कनॉट प्लेस)	-1999
19. अजमेर (राज.)	-1971	48. दिल्ली (प्रीत विहार	-2000
20. दिल्ली (पहाडी धीरज)	-1972	49. दिल्ली (अशोक विहार)	-2001
21. दिल्ली (नजफगढ़)	-1973	50. प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद)	-2002
22. दिल्ली (लालमंदिर)	-1974	51. भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)	-2003
23. हस्तिनापुर (प्राचीन मंदिर)	-1975	52. कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)	-2004
24. खतौली (मुज.-उ.प्र.)	-1976	53. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-2005
25. हस्तिनापुर (प्राचीन मंदिर)	-1977	54. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-2006
26. हस्तिनापुर (प्राचीन मंदिर)	-1978	55. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप)	-2007
27. दिल्ली (मोरी गेट)	-1979		

पुस्तक की लेखिका

पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री आदिमती माताजी का

जीवन परिचय

यह भारत वसुंधरा प्रारंभ से ही अनेक ऋषि-मुनियों की विहार स्थली रही है। जिस प्रकार समय-समय पर इस भारत भू पर तीर्थंकरों तथा अन्य महापुरुषों ने जन्म लेकर तथा धर्म का प्रचार-प्रसार कर इस भारत भूमि को अलंकृत किया है, उसी प्रकार महिलाओं ने भी जन्म लेकर अपने सत्कार्यों द्वारा उच्च आदर्श उपस्थित किया है। परमपूज्य गणिनी 105 आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी, जिनके ज्ञान की सुरभि सम्पूर्ण भारत वर्ष में जगह-जगह व्याप्त है, उन्हीं की सुशिष्या परमपूज्य 105 आर्यिकारत्न श्री आदिमती माताजी हैं।

आपका जन्म सन् 1937 में अजमेर नगर के धर्मनिष्ठ श्रेष्ठी श्री जीवनलाल जी के आँगन में मातु श्रीमती भगवानदेवी की कुक्षि से एक कन्या रत्न के रूप में हुआ, माता-पिता ने प्यार से आपका नाम अंगूरीबाई रखा। जिस प्रकार अंगूर अंदर और बाहर से एकदम कोमल और मधुर रस से परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार आप का हृदय भी कोमल और वात्सल्य रस से परिपूर्ण है, आप अपने माता-पिता की सबसे छोटी संतान हैं। धीरे-धीरे आप कुछ बड़ी हुईं तो आपको अध्ययन के लिए श्री भाग्य मातेश्वरी कन्या पाठशाला में प्रवेश दिलाया, वहाँ पर आपने प्रवेशिका तक अध्ययन प्राप्त किया, उसके बाद करीब 14 वर्ष की अल्प वय में ही आपका शुभ विवाह हुआ लेकिन विधाता से आपका ये सुख देखा न गया और करीब 19 वर्ष की अल्प अवस्था में ही आप वैधव्य अवस्था को प्राप्त हो गयीं। आपको शुरू से ही धर्म के प्रति अधिक रुचि थी, फिर आपने संसार से विरक्त हो अपने को धर्म मार्ग में लगा दिया। सन् 1957 में श्रेष्ठी श्री हीरालाल जी (निवाई वालों) परमपूज्य 108 श्री शिवसागर जी महाराज को श्री गिरनार जी की यात्रा के लिए ले जा रहे थे, उसी समय समस्त संघ का अजमेर में आगमन हुआ, वहीं पर परमपूज्य 105 आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी का आपको सानिध्य प्राप्त हुआ। तभी से आपने मन में ये धारणा की कि अब माताजी के साथ ही रहकर धर्म का अध्ययन करूँगी अतः आपने पूज्य माताजी की छत्रछाया में रहकर धार्मिक अध्ययन प्रारंभ किया और माताजी का सानिध्य प्राप्त कर

आपका वैराग्य और वृद्धिंगत हुआ। सन् 1958 में एक वर्ष आपने आरा बालाश्रम में रहकर संस्कृत प्रथमा की परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् 1959 में 108 आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज का चातुर्मास हुआ, चातुर्मास के अंतर्गत ही आपने पूज्य माताजी के पास रहकर न्याय, व्याकरण, सिद्धांत शास्त्र आदि अनेक साहित्य ग्रंथों का अध्ययन किया। आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज जी से सुजानगढ़ चातुर्मास में पूज्य माताजी ने आपको दूसरी प्रतिमा के व्रत दिलवाये। आचार्यश्री ने वहाँ से विहार कर फिर सीकर के लिए प्रस्थान किया। सन् 1961 में आचार्य श्री का ससंघ चातुर्मास हुआ, चातुर्मास के अंतर्गत ही पूज्य माताजी ने आपको स्त्रियोचित आर्यिका दीक्षा दिलायी, आपकी दीक्षा कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को हुई। दीक्षा के एक वर्ष पश्चात् ही पूज्य माताजी के साथ आप बंगाल, बिहार, उड़ीसा, कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि प्रांतों की यात्रा करते हुए वापस आचार्यश्री के सानिध्य में आ गईं। दिल्ली में 2500वाँ निर्वाण महोत्सव के पहले पूज्य माताजी की प्रेरणा से आपने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की टीका प्रारंभ की, यद्यपि माताजी स्वयं इस कार्य को करने में सक्षम थीं, लेकिन उनकी भावना हर समय अपनी शिष्याओं को ज्ञान क्षेत्र में आगे बढ़ाने की रही। उसके बाद भी आपने समयसार कलश (अमृतचंद स्वामी) पतन से बचिये, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि ग्रंथों की टीका की और पूज्य माताजी की ही प्रेरणा एवं आशीर्वाद से आपने भगवती आराधना ग्रंथ की टीका की। पूज्य माताजी के आशीर्वाद से भगवती आराधना ग्रंथ भी छप कर आ चुका है, आपका स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी आप निरंतर ध्यान, अध्ययन, जप, तप आदि में संलग्न रहती हैं।

ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आपको स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता रहे, जिससे जिनवाणी सेवा का कार्य निरंतर चलता रहे।

–आर्यिका सुबोधमती

(संघस्थ शिष्या-पूज्य आर्यिका श्री आदिमती माताजी)

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे।हैं
2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।
3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।
4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है– कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना एवं नवग्रहशांति जिनमंदिर।
5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।
6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।
7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।
8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।
9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।
10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।
11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं शारीरिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत ''वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला'' की स्थापना सन् 1974 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका हैऔर निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, छत्री बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली

परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।

17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.

संरक्षक

1. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन,सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द्र गाँधी व सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी, फलटन (महा.)।
8. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्ला, देहरादून (उ.प्र.)।
28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।

33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली चौक बाजार, लखनऊ।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपक्का, रांची (बिहार)।
47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाईन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।

70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेंद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)

पुस्तक की लेखिका

पूज्य आर्यिका रत्न 105 श्री आदिमती माताजी का

जीवन परिचय

यह भारत वसुंधरा प्रारंभ से ही अनेक ऋषि-मुनियों की विहार स्थली रही है। जिस प्रकार समय-समय पर इस भारत भू पर तीर्थंकरों तथा अन्य महापुरुषों ने जन्म लेकर तथा धर्म का प्रचार-प्रसार कर इस भारत भूमि को अलंकृत किया है, उसी प्रकार महिलाओं ने भी जन्म लेकर अपने सत्कार्यों द्वारा उच्च आदर्श उपस्थित किया है। परमपूज्य गणिनी 105 आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी, जिनके ज्ञान की सुरभि सम्पूर्ण भारत वर्ष में जगह-जगह व्याप्त है, उन्हीं की सुशिष्या परमपूज्य 105 आर्यिकारत्न श्री आदिमती माताजी हैं।

आपका जन्म सन् 1937 में अजमेर नगर के धर्मनिष्ठ श्रेष्ठी श्री जीवनलाल जी के आँगन में मातु श्रीमती भगवानदेवी की कुक्षि से एक कन्या रत्न के रूप में हुआ, माता-पिता ने प्यार से आपका नाम अंगूरीबाई रखा। जिस प्रकार अंगूर अंदर और बाहर से एकदम कोमल और मधुर रस से परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार आप का हृदय भी कोमल और वात्सल्य रस से परिपूर्ण है, आप अपने माता-पिता की सबसे छोटी संतान हैं। धीरे-धीरे आप कुछ बड़ी हुईं तो आपको अध्ययन के लिए श्री भाग्य मातेश्वरी कन्या पाठशाला में प्रवेश दिलाया, वहाँ पर आपने प्रवेशिका तक अध्ययन प्राप्त किया, उसके बाद करीब 14 वर्ष की अल्प वय में ही आपका शुभ विवाह हुआ लेकिन विधाता से आपका ये सुख देखा न गया और करीब 19 वर्ष की अल्प अवस्था में ही आप वैधव्य अवस्था को प्राप्त हो गयीं। आपको शुरू से ही धर्म के प्रति अधिक रुचि थी, फिर आपने संसार से विरक्त हो अपने को धर्म मार्ग में लगा दिया। सन् 1957 में श्रेष्ठी श्री हीरालाल जी (निवाई वालों) परमपूज्य 108 श्री शिवसागर जी महाराज को श्री गिरनार जी की यात्रा के लिए ले जा रहे थे, उसी समय समस्त संघ का अजमेर में आगमन हुआ, वहीं पर परमपूज्य 105 आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी का आपको सानिध्य प्राप्त हुआ। तभी से आपने मन में ये धारणा की कि अब माताजी के साथ ही रहकर धर्म का अध्ययन करूँगी अतः आपने पूज्य माताजी की छत्रछाया में रहकर धार्मिक अध्ययन प्रारंभ किया और माताजी का सानिध्य प्राप्त कर

आपका वैराग्य और वृद्धिंगत हुआ। सन् 1958 में एक वर्ष आपने आरा बालाश्रम में रहकर संस्कृत प्रथमा की परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् 1959 में 108 आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज का चातुर्मास हुआ, चातुर्मास के अंतर्गत ही आपने पूज्य माताजी के पास रहकर न्याय, व्याकरण, सिद्धांत शास्त्र आदि अनेक साहित्य ग्रंथों का अध्ययन किया। आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज जी से सुजानगढ़ चातुर्मास में पूज्य माताजी ने आपको दूसरी प्रतिमा के व्रत दिलवाये। आचार्यश्री ने वहाँ से विहार कर फिर सीकर के लिए प्रस्थान किया। सन् 1961 में आचार्य श्री का ससंघ चातुर्मास हुआ, चातुर्मास के अंतर्गत ही पूज्य माताजी ने आपको स्त्रियोचित आर्यिका दीक्षा दिलायी, आपकी दीक्षा कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को हुई। दीक्षा के एक वर्ष पश्चात् ही पूज्य माताजी के साथ आप बंगाल, बिहार, उड़ीसा, कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि प्रांतों की यात्रा करते हुए वापस आचार्यश्री के सानिध्य में आ गईं। दिल्ली में 2500वाँ निर्वाण महोत्सव के पहले पूज्य माताजी की प्रेरणा से आपने गोम्मटसार कर्मकाण्ड की टीका प्रारंभ की, यद्यपि माताजी स्वयं इस कार्य को करने में सक्षम थीं, लेकिन उनकी भावना हर समय अपनी शिष्याओं को ज्ञान क्षेत्र में आगे बढ़ाने की रही। उसके बाद भी आपने समयसार कलश (अमृतचंद स्वामी) पतन से बचिये, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि ग्रंथों की टीका की और पूज्य माताजी की ही प्रेरणा एवं आशीर्वाद से आपने भगवती आराधना ग्रंथ की टीका की। पूज्य माताजी के आशीर्वाद से भगवती आराधना ग्रंथ भी छप कर आ चुका है, आपका स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी आप निरंतर ध्यान, अध्ययन, जप, तप आदि में संलग्न रहती हैं।

ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आपको स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता रहे, जिससे जिनवाणी सेवा का कार्य निरंतर चलता रहे।

–आर्यिका सुबोधमती

(संघस्थ शिष्या-पूज्य आर्यिका श्री आदिमती माताजी)

सरस्वती की प्रतिमूर्ति

सन् 1952 में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने बाराबंकी नगर में चातुर्मास किया था, चातुर्मास के पश्चात् विहार करते हुए आगरा छीपीटोला में संघ का पदार्पण हुआ था, उस समय दर्शन के लिए वहाँ की जनता उमड़ पड़ी थी, अजमेर से मैं भी आगरा छीपीटोला आई हुई थी, आचार्य देशभूषण जी महाराज का नाम तो पहले सुना था, किन्तु दर्शन प्रथम बार ही हुए थे।

आहार के समय मंदिर में चर्चा चल रही थी कि आचार्यश्री के संघ में एक छोटी उम्र की कुंवारी लड़की भी है, यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि लड़की भी कहीं कुंवारी रह सकती है, लड़की तो कैसी भी हो, उसकी शादी करनी ही पड़ती है।

क्योंकि इसके पहले कभी भी किसी के विषय में देखने या सुनने को नहीं मिला कि अमुक ग्राम की लड़की ने शादी नहीं की और साधु-संघ में रहने लगी। बिना इच्छा के भी लड़की को तो शादी के बंधन में बंधना ही पड़ता है, मैं तो यही जानती थी। उस समय मेरी उम्र 15 वर्ष की थी, किन्तु बन्धन पड़ चुका था। आगरा से विहार करते हुए आचार्यश्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र दर्शनार्थ पहुँचे।

वीरों की भूमि पर मैना वीरमती बनी—आजन्म ब्रह्मचर्य को धारण करने वाली कुमारी मैना ने ईसवी सन् 1953 में यहाँ अतिशय क्षेत्र महावीर जी में माता-पिता को बिना सूचना दिये ही आचार्यश्री से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर ली थी। दीक्षा का नाम गुरुजी ने वीरमती रखा था।

दूसरी बार पुनः आचार्य देशभूषण जी महाराज का संघ आगरा छीपीटोला आया। उस समय ये छोटी सी क्षुल्लिका छोटी सी कटोरी में आहार करती थीं। इनके आहार और दर्शन का सबको कौतुक था, क्योंकि इनके पहले कभी किसी ने भीकुंवारी अवस्था में दीक्षा नहीं ली थी, इसलिए दर्शकों की भीड़ लगी रहती थी। उस समय ये कौन जानता था कि ये क्षुल्लिका वीरमती आगे जाकर मेरी परमोपकारी गुरु बनेंगी।

पुनः इन्होंने सन् 1954-55 में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज के दर्शन किये एवं उनकी आज्ञा से सन् 1956 में उनके प्रथम शिष्य एवं पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज से वैशाख कृष्णा दूज को आर्यिका दीक्षा लेकर ज्ञानमती नाम प्राप्त किया।

उन आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज का जंघाबल घट जाने से लगातार तीन चातुर्मास जयपुर खानियाँ में हुए थे। अंतिम तीसरे वर्ष सन् 1957 में आश्विन कृष्णा अमावस्या के दिन पूर्ण सावधानीपूर्वक समाधिमरण हुआ, इस वर्ष संघ में आचार्य महावीरकीर्ति महाराज ने भी संघ के साथ ही चातुर्मास किया था।

आचार्य महावीरकीर्ति महाराज ने क्षुल्लक दीक्षा आचार्य वीरसागर जी महाराज से ली थी, गुरु की समाधि निकट है, यह जानकर ये दर्शनार्थ आये थे। आचार्य वीरसागर जी महाराज का आचार्यपद सर्वसंघ की सम्मति से मुनि श्री शिवसागर जी महाराज को दिया गया था।

चातुर्मास के पश्चात् आचार्य शिवसागर जी महाराज ने ससंघ गिरनार यात्रा के लिए प्रस्थान किया। संघपति निवाई (राजस्थान) निवासी ब्र.हीरालाल सेठ थे। संघ जयपुर खानिया से विहार करते हुए अजमेर आया, उस समय छोटी उम्र की आर्यिका ज्ञानमती माताजी और क्षुल्लिका जिनमती माताजी थीं, ये अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी थीं, ज्ञानमती माताजी सतत पठन-पाठन में रत रहती थीं। मैं भी इस खोज में थी कि मुझे अध्ययन कराने वाला कोई गुरु मिले, इनकी अध्ययनशीलता को देखकर एवं पूर्वजन्म के संस्कारवश ज्ञानमती माताजी को देखकर अंतरंग में इतना स्नेह उत्पन्न हुआ मानों कितने भवों की माँ मिल गई हो। मैंने अपने मन में यह निर्णय कर लिया था कि किसी प्रकार से घर छोड़कर मैं इन माताजी के पास रहकर अध्ययन करूँगी। उस समय संघ करीब आठ दिन अजमेर में रहा था, माताजी को एक क्षण भी छोड़ने की इच्छा नहीं होती थी, माताजी भी अपने साथ रहने की प्रेरणा देती थीं अजमेर में संघ सरसेठ भागचन्द जी सोनी की नशिया में विराजमान रहा, धर्म कीखूब प्रभावना हुई। सौभाग्य से ज्ञानमती माताजी के उपदेश सुनने का लाभ भी मिला था।

अजमेर से जब संघ का प्रस्थान हुआ था, तब ब्यावर तक मैं भी साथ गई थी, चौका भी मेरे मामाजी का साथ में था।

माताजी ने जब से मुझे देखा और मेरा परिचय हुआ, तब से ही माताजी का मेरे प्रति प्रेम-वात्सल्यपूर्वक मेरे उद्धार के लिए प्रयास भी रहा, ब्यावर में मैं माताजी के समक्ष यह निश्चित कर चुकी थी कि गिरनार यात्रा के पश्चात् आप अजमेर चातुर्मास करोगे, तब मैं अवश्य आपके साथ चलूँगी, अभी तो मुझे कोई नहीं भेजेगा, उस समय तो मैं वापस अजमेर आ गई। जब आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज का संघ गिरनार यात्रा करके लौटा और सन् 1958 का चातुर्मास ब्यावर में हुआ था। मुझे जब से आत्मकल्याण का मौका मिला था, तब से यह लगन थी कि मैं धर्मग्रन्थों का अध्ययन कहाँ करूँ? किसके पास करूँ इत्यादि। किन्तु 'भावना भवनाशिनी' के अनुसार ज्ञानमती माताजी का सम्पर्क हुआ उससे भावना में और उत्कर्षता हुई। मेरी पढ़ने की अत्यधिक रुचि देखकर हमारे कन्या पाठशाला की प्रधान अध्यापिका विद्यावती बाई, जो पं.लालबहादुर शास्त्री की बड़ी बहिन थीं, उनका बार-बार यही कहना था कि तुम "आरा के आश्रम में पढ़ने जाओ" वहाँ की संचालिका पंडिता चंदाबाई हैं, आश्रम में अच्छी पढ़ाई है, अच्छी व्यवस्था एवं अनुशासन है। माँ-पिताजी ने मुझे आरा आश्रम में पढ़ने के लिए भेज दिया। वहाँ एक वर्ष तो अध्ययन किया, परीक्षा होने के बाद अजमेर वापस आते समय चंदाबाई से मना करके आई कि अब मैं आगे यहाँ पढ़ने नहीं आऊँगी। उनको मन में खेद हुआ और कहा कि अच्छी लड़कियाँ यहाँ रहना नहीं चाहतीं। मुझे तो एक ही लगन लगी थी कि कब माताजी मिलें और उनके पास रहकर अध्ययन करूँ, मैं संस्कृत ग्रंथों को पढ़ना चाहती थी, संघ में भी ज्ञानमती माताजी ही सभी ग्रंथों का अध्ययन करा सकती थीं। उधर माताजी की आकर्षण युक्त मीठी भाषा चुंबक के समान मन को खींच रही थी।

सन् 1959 का चातुर्मास अजमेर हुआ, उसी वर्ष मैं भी आरा से आ गई थी जैसे ही सुना कि आचार्य शिवसागर जी महाराज के संघ का चातुर्मास अजमेर होगा, मेरे हर्ष का पारावार नहीं था क्योंकि मनोरथ अब साकार होने वाला है, मुझे माताजी मिल जायेगीं। जिन गुरु की खोज में मैं कब से प्रयास कर रही थी, वे गुरु अनायास ही मुझे घर बैठे मिल गये, यह महान पुण्य की बात थी। चातुर्मास में मैं प्रतिदिन माताजी के पास पढ़ने जाती थी, माताजी मेरी माँ से कहती रहती थीं कि तुम्हारी लड़की को हमें दे दो, आचार्यकल्प श्रुतसागर जी एवं आचार्यश्री का भी पूर्ण वात्सल्य था, वे भी माँ को कहते थे कि तुम अपनी लड़की को ज्ञानमती माताजी की गोद में दे दो, वे हंस के रह जातीं और नकारात्मक उत्तर देती थीं।

माताजी के घर का परिचय —अजमेर चातुर्मास में ज्ञानमती माताजी के जन्मस्थान टिकैतनगर से पिताजी, माँ, दूसरे नं.की बहिन शांतिदेवी, भाई प्रकाश और दो छोटी बहिनें – 4 वर्ष की कामिनी और माधुरी करीब सवा साल की थी, (जो

अब आर्यिका चंदनामती माताजी हैं) ये सब दर्शनों के लिए आये थे, उनसे ज्ञात हुआ कि माताजी ने किस प्रकार का पुरुषार्थ किया था, कैसा साहस और धैर्य रखा घर छोड़ने के लिए! सब समाचार उन्होंने सुनाये। माताजी का घर का नाम ***"मैना"*** था।

वैराग्य के अंकुर —मैना जब सात-आठ वर्ष की थी, तब से ही जन्मान्तर के संस्कारवश बालकों के समान खेलना-कूदनादि बाल क्रीड़ायें नहीं के समान थीं, इनकी माँ का भी पूरा अनुशासन था, वे लड़कियों के साथ बाहर खेलने नहीं जाने देती थीं। इनको घर के काम में लगाये रखतीं, ये सभी बहिनों और भाइयों में सबसे बड़ी थीं, इनके नौ बहिनें और चार भाई हैं। बड़ी होने के नाते इन के ऊपर काम की जिम्मेदारी थी।

मैना घर में काम अधिक होने से पाठशाला में पढ़ने भी कुछ देरी से पहुँचतीं, किन्तु बुद्धि तीक्ष्ण होने से पाठ सुनाने में सबसे आगे रहती थीं।

एक दिन पाठशाला में सभी लड़कियाँ पाठ सुनाने के लिए खड़ी थीं। पाठ सुनाने में कोई लड़कियाँ भूल भी जाती थीं, तब पंडितजी कहते–मैं प्रतिदिन कहता हूँ कि घर से पाठ याद करके आया करो परन्तु तुम लोग सुनती नहीं हो, अच्छा जिस लड़की ने घर में पाठ याद नहीं किया है, वे हाथ ऊँचा करें।

लड़कियों के साथ मैना ने भी हाथ उठा दिया, तब पंडितजी आश्चर्यचकित होकर बोले–अरे! तुमने हाथ क्यों उठाया? तुम तो हमेशा पाठ याद करती हो।

तब मैना ने कहा—

मैं घर में कभी पाठ याद नहीं करती।

तब पंडितजी ने और अधिक आश्चर्य को व्यक्त करते हुए कहा—

तब तुम पाठ कहाँ याद करती हो? अभी-अभी तो तुम घर से आ ही रही हो।

तब "मैना" ने कहा कि जब तक एक-दो लड़कियाँ पाठ सुनाती हैं, तब तक मैं याद कर लेती हूँ। तब पंडितजी ने कहा कि पिछले सब पाठ तुम्हें कैसे याद रहते हैं? ऐसा कहकर उन्होंने एक-दो प्रश्न पूछे, तब मैना ने श्लोक सहित सही उत्तर सुना दिये। उत्तर सुनकर पंडितजी बहुत ही प्रभावित हुए और बोले–इसका क्षयोपशम बहुत ही तीव्र है।

पहले लड़कियों को ज्यादा नहीं पढ़ाते थे, भले ही कितनी भी पढ़ने की इच्छा क्यों न हो? इनकी माँ ने पढ़ाई छुड़ा दी थी तब ये घर में अन्य अनेक प्रकार के पाठ याद करती रहती थीं, काम भी करती जातीं और पुस्तक खोलकर एक जगह रख लेतीं, उससे पाठ भी याद कर लेतीं, इस प्रकार समय का सदुपयोग कर लेती थीं।

पद्मनन्दि पंचविंशतिका ग्रंथ का प्रभाव —इनकी माँ की शादी में उनके पिताजी ने उनको दहेज में अन्य भौतिक वस्तुओं के साथ एक पद्मनंदि-पंचविंशतिका ग्रन्थ

दिया था, वे हमेशा उस ग्रन्थ का स्वाध्याय किया करती थीं, इस प्रकार उन्होंने उस ग्रन्थ का स्वाध्याय कई बार किया था।

माँ की प्रेरणा से मैना भी इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने लगी। जिससे इनके परिणामों में विरक्ति बढ़ने लगी कि मैं भी बाल ब्रह्मचारिणी रहकर तपश्चरण करके लौकान्तिक देव बनूँ जो कि एक भवावतारी होते हैं, जो स्वर्ग से आकर मनुष्य का भव धारणकर तप करके कर्मों का नाश करके मोक्ष चले जाते हैं।

किन्तु इतनी छोटी उम्र में घर वालों से कुछ कहने का और कुछ करने का साहस भी नहीं होता था।

मैना ने एक दिन शास्त्र स्वाध्याय में सुना था कि दक्षिण प्रान्त में मुनिराज रहते हैं तथा बड़े तपस्वी होते हैं। बचपन तो था ही, मन में विचार उत्पन्न हुए कि उन श्रेष्ठ मुनिराजों का दर्शन अवश्य करना चाहिए। इस भावना को अपनी सहेली के आगे भी व्यक्त कर दिया। इतना ही नहीं, दोनों सहेलियों ने दक्षिण जाने का प्लान भी बना लिया। लेकिन सहेली आकर मना कर गई कि हम इतनी दूर अकेले कहाँ जायेंगे, हम को नहीं चलना है। खैर.....

वैराग्य प्रकट हुआ —एक दिन अच्छे-अच्छे गहनों के नमूने लेकर मुनीम आया और कहा – मैना! लाला ने कहा है कि मैना से गहनों की डिजाइन पसंद करा लाओ।

मैना ने कहा– जाओ, शांति से पसंद करवा लो, उस समय इनकी माँ खड़ी-खड़ी देख रही थीं। यह सुनते ही उनके हृदय का बाँध टूट पड़ा और वे फूट-फूट के रोने लगीं, सारे गाँव में यह चर्चा फैल गई कि मैना विवाह नहीं करना चाहती। इनके पिताजी ने भी बहुत समझाया परन्तु जब देखा कि यह अपने विचारों में पक्की है और ये तो मुझे धर्म की अच्छी-अच्छी बातें समझाने लगी, तब वे चुप हो गये और दूसरे ही दिन महमूदाबाद चले गये और मामा महीपाल को बुला लाये। पहले तो मामा ने प्रेम से बहुत कुछ समझाया परन्तु जब कुछ असर होते नहीं दिखाई दिया तब वे मैना से प्रश्न-उत्तर करने लगे।

'तुम्हें वैराग्य कैसे हुआ' यह बताओ? तुमने अभी संसार में देखा ही क्या है जिससे इतनी बैरागिन बनी हो, अभी तो तुम्हारी आँखें खुली हैं!

मैना ने कहा– मुझे 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ पढ़कर वैराग्य हुआ है, देखो मामा! यह ग्रन्थ कितना अच्छा है, इस प्रकार उस ग्रन्थ के वैराग्यप्रद अनेक श्लोक सुना दिये।

तब मामा का पारा हाई हो गया और यद्वा-तद्वा कहने लगे, तब मैना चुप हो गई। जब वातावरण कुछ शांत हुआ, तब उन्होंने पुनः समझाते हुये कहा–

बेटी मैना! देखो, जैन शास्त्रों के अनुसार कुंवारी कन्या दीक्षा नहीं लेती।

तब मैना ने कहा–ब्राह्मी, सुन्दरी, अनंतमती और चंदना ने भी दीक्षा ली थी, ये भी कुंवारी थीं।

तब मामा बोले–बेटी! वे सब नपुंसक थीं।

तब **'मैना'** कुछ विचार और आश्चर्य में पड़ गई, कुछ माया प्रपंच समझ में नहीं आया, परन्तु फिर कुछ सोचकर बोली– मामा! शास्त्रों में तो उन्हें कन्या ही कहा है, यदि नपुंसक होतीं तो उन्हें कन्या क्यों कहा?

इस प्रकार अनेक प्रश्नोत्तर के पश्चात् मामा बोले–देखो बेटी! तुम्हारा शरीर बहुत कमजोर है अतः तुम दीक्षा कैसे निभा सकोगी? यह दीक्षा चालीस वर्ष की उम्र के बाद लेनी चाहिए।

तब **'मैना'** ने कहा– मृत्यु का कुछ भरोसा नहीं है अतः 'यह तन पाय महातप कीजे, जामें सार यही है'।

जब बहुत कुछ समझाने, डाँटने-फटकारने पर भी मैना को ज्यों का त्यों देखा, तब मामा ने सारी गुस्सा अपनी बहिन पर उतार दी।

और बोले–तुमने ही तो इसे महासतियों की कथा एवं शास्त्र पढ़ा-पढ़ाकर बरबाद कर दिया। उसी का ही तो यह परिणाम निकला कि यह तुम्हारे हाथ में नहीं रही।

मामा तो वापस अपने घर चले गये। पिताजी का मन बहुत ही चिंतित हो गया, मैना को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास करते परन्तु मैना उनको उल्टा समझा देती थी, तब क्या करें, बेचारे शांत हो जाते। गाँव के लोग कहते–अरे! कुछ नहीं, जबरदस्ती शादी कर दो, उसे बकने दो, वह अभी क्या कर सकती है। अरे! अभी तो उसके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, भला इतनी छोटी लड़की के ब्रह्मचर्यव्रत लेने से दुनियाँ तुम्हें हमें क्या कहेगी?

इस प्रकार घर के भाई-बन्धु और नगर वाले, मैना किसी प्रकार घर छोड़ कर नहीं जावे, इसी प्रकार की सलाह इनके पिताजी को दिया करते थे।

गाँव में तथा आस-पास के लोग यही कहा करते थे कि इस इलाके में सैकड़ों वर्षों में ऐसा सुनने में नहीं आया कि किसी कुँवारी लड़की ने घर का त्याग कर ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया हो। इनको बड़े-बड़े लोग भी आकर समझाते यद्यपि बड़े जनों से बोलने की आदत नहीं थी फिर भी साहस करके संसार की असारता के विषय में उनको शास्त्रों की वैराग्यवर्धक बातें सुना देती थीं।

उन सभी लोगों के सामने इनकी माँ भी कहती थीं कि मंदिर से आकर यदि तत्काल इसे दूध नहीं मिले तो चक्कर आने लगते हैं, उपवास करना तो इसके वश की बात ही नहीं है।

तब मैना ने कहा–धीरे-धीरे सब अभ्यास हो जायेगा। अपने आप सहन- शक्ति बढ़ जावेगी, इत्यादि प्रकार से बहुत देर तक चर्चा चलती रही, अन्त में इनकी दृढ़ता देखकर सब चले गये और पिताजी से बोले–उसे समझाने जाओ तो वह हमको ही समझा देती है।

इनको भगवान की पूजन करने की बहुत ही रुचि थी, उस समय तक गाँव में महिलायें मंदिर में पालथी मारकर नहीं बैठती थीं, पैर समेट कर बैठकर जाप करतीं और चली जातीं किन्तु ये अपने हाथ से सामग्री धोकर चौकी पर रखकर आसन से बैठकर पूजन करने लगी। कुछ दिन बाद इनकी माँ भी इनके साथ पूजन करने लगीं तब इनको देखकर औरतें हंसतीं, बातें बनातीं, मंदिर जी में शास्त्र स्वाध्याय करना भी प्रारंभ कर दिया, तब वृद्ध महिलायें कहने लगीं–अरे ये तो पंडिता बन रही है!

स्वप्न देखा —मैना ने एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में स्वप्न देखा कि–मैं श्वेत वस्त्र पहन कर हाथ में पूजन की थाली लेकर मंदिर जा रही हूँ। आकाश में ऊपर पूर्णिमा का चन्द्रमा साथ-साथ चल रहा है, चन्द्रमा की किरणें सारी मेरे ऊपर छिटकी हुई हैं वह चांदनी अन्यत्र कहीं नहीं है, इस दृश्य को देखकर पड़ोस के श्रावक लोग मुख में अंगुली दबाकर बहुत ही आश्चर्य कर रहे हैं और साथ ही प्रशंसा भी कर रहे हैं।

इस प्रकार का अद्भुत स्वप्न देखकर मैना को बड़ी प्रसन्नता हुई मानों मेरी इच्छा सफल ही हो गई हो। प्रातः यह स्वप्न अपने छोटे भाई कैलाश चन्द से कहा। उसने कहा–जीजी! तुम जल्दी ही अपनी मनोभावना को पूर्ण करोगी। जब स्वप्न पिताजीको कहा तो खूब हँसे और बोले–मैना बिटिया! तुम तो घर से उड़ जाने के लिए ही मुझे बहकाती रहती हो। किन्तु वे समझ चुके थे कि अब ये घर में ज्यादा दिन रहने वाली नहींहै।

आचार्य देशभूषण जी महाराज का दर्शन —इसी वैराग्य की चर्चा के बीच एक दिन इनके पिताजी ने आकर कहा कि–सुना है लखनऊ में एक दिगम्बर मुनिराज आये हुए हैं, उनका बहुत ही प्रभाव है। यह सुनकर मैना को दर्शन करने की उत्कंठा जागृत हुई। परन्तु पिताजी इसलिए दर्शनों के लिए नहीं ले जाते कि कहीं यह वहीं महाराज के पास न रह जाय।

मैना के वैराग्य की चर्चा आचार्य देशभूषण जी महाराज तक पहुँच गई कि टिकैतनगर में एक छोटी लड़की है वो दीक्षा लेना चाहती है।

तब महाराज जी ने कहा–हाँ! ऐसा श्मशान वैराग्य तो बहुतों को होते देखा है। छोटी उम्र में दीक्षा लेना कोई सरल बात नहीं है। यह समाचार मैना के पास आ गया, तब भी वे घबराई नहीं, अपने निर्णय पर अडिग रहीं। कुछ दिनों के बाद संघ टिकैतनगर आ गया, इनने पहली बार ही दिगम्बर आचार्य के दर्शन किये थे। दर्शन

से अपना जीवन धन्य एवं सफल समझा। इनकी माँ इनको अपने साथ लेकर मध्यान्ह के समय आचार्यश्री के पास पहुँचीं।

आचार्यश्री से कहा – महाराजश्री! यह लड़की ब्रह्मचर्य व्रत लेना चाहती है किन्तु हम लोग ऐसा नहीं चाहते इसलिए आप इसे समझाइये। पश्चात् मैना ने आचार्यश्री से पूछा–मुझे आत्मकल्याण करने का अधिकर है कि नहीं?

आचार्यश्री ने उत्तर दिया–जैनधर्म में आत्मकल्याण करने का अधिकार सभी को है, पशु-पक्षी भी अपने योग्य धर्म धारण कर सकते हैं तुम तो मनुष्य हो। फिर माँ ने कहा–कुँवारी कन्या कैसे दीक्षा ले सकती है?

इसी बीच मैना ने कहा–महाराज जी! ब्राह्मी-सुन्दरी और चंदनादि कुंवारी कन्या थीं या नपुंसक?

आचार्यश्री हँसते हुए बोले–ये सब कुँवारी कन्यायें ही थीं नपुंसक नहीं थीं, नपुंसक को तो दीक्षा लेने का अधिकार ही नहीं है।

आचार्यश्री ने पूछा–तुम्हें वैराग्य किस कारण से हुआ?

तब मैना ने कहा–मुझे पद्मनन्दिपंचविंशतिका ग्रंथ का स्वाध्याय करने से वैराग्य हुआ। इस ग्रन्थ के वैराग्यप्रद अनेक श्लोक महाराज को सुना दिये।

तब महाराज ने कहा–ठीक है यदि तुम्हारे मन में विरक्ति है तो पुरुषार्थ करो। पश्चात् जब महाराज का वहां से विहार हुआ, तब भी मैना ने घर से निकलने का बहुत प्रयास किया परन्तु विहार के समय रास्ते से जबरदस्ती घर के लोग पकड़कर ले आये थे जिससे बड़ा दुःख था कि कब गृहबन्धन से छूटूँगी।

घर से अंतिम प्रस्थान किया —मैना ने अपने छोटे भाई कैलाश से कहा– देखो कैलाश! तुम मेरे सच्चे भाई तभी कहला सकते हो जब कि समय पर मेरे काम आओ। तब कैलाश ने इनकी बात मान ली और उससे वचन ले लिया था।

रक्षाबंधन का दिन था। बहिन मालती का जन्म हुए 22 दिन ही हुए थे पिताजी दूसरे गाँव गये हुए थे। अब क्या था अच्छा अवसर देखा, बहुत ही अनुनय-विनय से माँ को राजी किया और भाई कैलाश के साथ बाराबंकी जाने का निर्णय बना लिया। यह वह समय था, जब कुंवारी लड़कियों को घर से बाहर नहीं निकलने देते थे, फिर बिना माता-पिता की आज्ञा के दूसरे गाँव जाना तो बहुत ही कठिन था, परन्तु विरक्त को जबदस्ती कौन अनुरक्त कर सकता है। माँ से कहा–अब मैं महाराज के दर्शन करने अवश्य जाऊँगी, बहुत दिन हो गये जाने नहीं देती हो, राजी से तो कोई भी घर नहीं छोड़ सकते। ये सभी बहिन-भाई से बड़ी थी, घर के सभी काम-काज की जिम्मेदारी इनके ऊपर थी। प्रखर बुद्धि की धारक होशियार थीं, सभी छोटे भाई-बहिनों को सम्हालने वाली और अभी माँ प्रसूतीगृह में ही थीं और

अभी तक इस अवस्था में किसी ने घरत्याग कर दीक्षा भी नहीं ली थी, बड़ी विकट समस्या थी।

आखिर में माँ ने कहा–देखो बिटिया! तुम पिताजी के आने के पहले ही महाराज के दर्शन करके आ जाना अन्यथा इस प्रसूती अवस्था में ही तुम्हारे पिताजी मुझ पर उपद्रव करेंगे।

क्योंकि इससे पहले से ही जब से इनका गृहत्याग का मानस बना था, तब से ही पिताजी माँ को सदैव फटकारते रहते थे कि.....

तुमने ही इसे रात-दिन पढ़ा-पढ़ाकर ऐसा बना दिया है। तुमने न तो कभी खेलने जाने दिया न कभी उसकी इच्छा के अनुसार पाठशाला ही भेजा, सदा बंधन में रख-रखकर और दर्शनकथा, शीलकथा आदि कथाएँ पढ़ा-पढ़ाकर इसकी बुद्धि खराब कर दी है।

अभी तक दुकान के रुपये-पैसों की चाबी, तिजोरी की चाबी सब इनके पास ही थीं। दो वर्ष का भाई रवीन्द्र जो पास में सोया हुआ था, धीरे से उठीं, स्नानादिक कर भगवान की आराधना करके घर लौटकर आने पर भी रवीन्द्र सोया ही था। जल्दी ही माँ से आज्ञा ली और आगे बढ़ीं, माँ बार-बार कह रही थीं–बिटिया मैना! आज ही शाम को लौटकर आ जाना। उनको सान्त्वना देते हुए मैना ने भी कहा–देखो! मैं कुछ भी लेकर नहीं जा रही हूँ इत्यादि.....

'मैना' भाई कैलाश को लेकर शीघ्र ही घर से रवाना हो गईं।

इस वर्ष आचार्य देशभूषण जी महाराज का चातुर्मास बाराबंकी में ही था। बड़े हर्ष के साथ बाराबंकी मंदिर जी में पहुँचीं और आचार्यश्री के दर्शन किये, उस समय के आनंद का वर्णन नहीं किया जा सकता।

आचार्यश्री ने आशीर्वाद देकर पूछा...मैना आ गई।

अब क्या था, मैना के हर्ष का पारावार नहीं था क्योंकि गृहपिंजरे से **'मैना'** उड़कर गुरु की शरण में आ पहुँची थी। भाई के बहुत कुछ कहने पर भी वापस नहीं गई, समझा-बुझाकर भाई को घर भेज दिया। घर में जब गाँव से पिताजी लौट कर आये और मैना... मैना आवाज लगाई तो मालूम हुआ कि वो तो महाराज के दर्शन करने गई। पिताजी बड़े चिंतित हो गये, मैना को कई बार लेने के लिए भाई को भी भेजा परन्तु कुछ न कुछ बहाना कर वापस लौटा देती कि अमुक कार्य हो जाने के बाद आऊँगी इत्यादि।

आश्विन सुदी चौदश को आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज का केशलोंच था। उस अवसर पर अनेक नगरों के श्रावकजन केशलोंच देखने आये थे। उस अवसर पर टिकैतनगर से इनके माता-पिता भी आये हुए थे कि मैना को अब ले आयेंगे।

परन्तु हुआ क्या..... अच्छा अवसर देखकर माता-पिता से कहा–चलो आचार्यश्री के पास मुझे दीक्षा दिला दो। वे आचार्यश्री के पास पहुँचे और कहा कि आचार्यश्री इस लड़की को समझाओ, यह अभी घर चले, इस बीच मैना ने कहा–पूज्य गुरुदेव! आप संसार समुद्र से पार करने वाली दीक्षा प्रदान कीजिये।

आचार्यश्री ने कहा–अभी तुम्हारे अष्टमूलगुण भी नहीं हैं एकदम दीक्षा कैसे?

मैना ने कहा–गुरुदेव! जैसा भी आप नियम व्रत कहेंगे, मैं पालन करुँगी। आप तो मुझे दीक्षा ही दे दीजिये। जब आचार्य श्री का केशलोंच हो रहा था, सभा में उसी समय मैना ने, अपने हाथों से केशलोंच करना चालू कर दिया। यह देखकर पिताजी पता नहीं कहाँ चले गये, दो दिन तक पता ही नहीं था। माँ वहीं बेहोश होकर गिर गईं। आचार्यश्री भी इस साहस को देखकर दंग थे, लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई, हल्ला-गुल्ला मच गया।

रोको, रोको, अभी इस लड़की की उम्र बहुत छोटी है। कोई कहता-पुलिस को बुलाओ, इस लड़की को ले जाय, इस प्रकार बहुत ही शोर-गुल हो रहा था, उस समय आचार्यश्री ने अपना हाथ ऊँचा करके सभी को शांत किया। उधर इनकी माँ के मामा ने केशलोंच करते हुए मैना का हाथ रोका। मैना ने वहाँ से उठकर भगवान के चरणों की शरण ग्रहण की और यह प्रतिज्ञा की कि जब तक यह उपसर्ग दूर नहीं होगा, तब तक मेरे अन्न-जल का त्याग है।

जब वहाँ का वातावरण शांत हो गया तब माँ पास में आकर जैसे-तैसे वहाँ से मैना को उठाकर अपने ठहरने के स्थान पर ले गईं। पूरी रात माँ-बेटी का वार्तालाप चलता रहा, वैराग्य की चर्चा से रात्रि पूर्ण हुई।

मैना ने कहा–माँ! यदि तुम मेरी सच्ची माँ हो तो आचार्यश्री से मुझे व्रत दिला दो। यह सुनकर माँ चौंक गईं और बहुत देर तक सोचती रहीं परन्तु जो सुमेरु के सदृश अडिग है उसके लिए कौन क्या कर सकता है?

अन्ततोगत्वा माँ को मैना के कहे अनुसार पत्र लिखना पड़ा और माँ मोहिनी ने निर्मोहनी बनकर अपने आंचल से अपने आँसुओं को पोंछते हुए आचार्यश्री को पत्र दिया और कहा–आचार्यश्री! इस लड़की में दृढ़ता बचपन से ही है, यह सभी कुछ नियमों का पालन कर सकती है, यह मुझे पूर्ण विश्वास है।

आचार्यश्री ने कहा–जाओ, इसे शीघ्र ही स्नान कराकर नई सफेद साड़ी पहनाकर ले आओ। आज्ञानुसार शीघ्र सफेद साड़ी पहनकर और हाथ में श्रीफल लेकर मैना उपस्थित हुई, तब आचार्यश्री ने जीवनपर्यंत का ब्रह्मचर्य व्रत और सप्तम प्रतिमा के व्रत दिये।

इधर बहुत खोज करने के बाद इनके पिताजी एक जंगल में रोते हुए बैठे मिले,

वहाँ से उनको समझाकर लाये। पश्चात् वे आकर मैना से मिले और कहा– बिटिया! अब तुम घर चलो, तुमने ब्रह्मचर्य व्रत तो ले ही लिया है, टिकैतनगर में चाहे मंदिर में रहना या घर में रहना, इस प्रकार बहुत कुछ समझाया।

मैना ने कहा–अब आप लोग मोह छोड़ो, मैं दीक्षा लेने के बाद ही टिकैतनगर में पैर रखूँगी। सभी छोटे-छोटे भाई-बहिन खड़े-खड़े रो रहे थे– जीजी घर चलो। उस समय का दृश्य बड़ा करुणामय था, उस समय वहाँ ऐसा कौन था कि जिसके आँखों से आँसुओं की धारा नहीं बह रही हो।

आचार्यश्री यह दृश्य देखकर मन ही मन विचार कर रहे थे कि सचमुच में यह कोई निकट संसारी जीव है, इसके संसार का अंत आ चुका है, ऐसा दिखाई देता है। उसी समय मामा महिपाल दास आ गये और बहुत हल्ला-गुल्ला मचाया तथा पुलिस को बुलाकर वातावरण को अशांत करने की धमकी भी दी थी। जब कुछ उपाय नहीं दिखाई दिया तो मैना को, जो सत्याग्रहपूर्वक मंदिर में बैठी थीं, उसको समझाने गये परन्तु जब कुछ परिणाम नहीं निकला तब अपनी बहिन (मैना की माँ) को यद्वा-तद्वा सुनाकर अपने घर वापस लौट गये।

चातुर्मास समाप्ति के बाद आचार्यश्री ने बाराबंकी से विहार किया और वहाँ से महावीरजी की यात्रा का प्रोग्राम बना। फाल्गुन की अष्टान्हिका महावीर जी क्षेत्र पर हुई। ब्र. कु.मैना, जो आर्यिका के सदृश चर्या का पालन कर रही थीं अर्थात् एक साड़ी मात्र ही शरीर पर थी, पैदल विहार करतीं, रात्रि में चावल की घास पर एक करवट से शयन करके रात्रि व्यतीत कर रही थीं, एक बार ही भोजनपान था, इस प्रकार आगे बढ़ने के लिए पूर्णरूप से तैयार थीं।

अवसर पाकर आचार्यश्री से निवेदन किया कि स्वामिन्! मुझे दीक्षा प्रदान कीजिये। आचार्यश्री इनकी दृढ़ता, योग्यता, बुद्धिमत्ता को अच्छी तरह देख चुके थे।

आचार्यश्री ने चैत्र कृष्णा एकम् का मुहूर्त निकाला परन्तु घर वालों को दीक्षा का समाचार नहीं दिया, क्योंकि वे समझते थे कि माता-पिता आदि घर वाले आयेंगे तो फिर रुकावट डालेंगे।

अतः आचार्यश्री ने चैत्र कृष्णा एकम् को प्रातः 10 बजे क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की और 'वीरमती' यह नाम सभा में घोषित किया। आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज ने उपदेश में कहा कि मैंने प्रारंभ से ही इसमें जितनी वीरता देखी है, आज के युग में वह किसी में नहीं देखी है, इसलिए इसके गुणों के अनुरूप ही इनका 'वीरमती' यह नाम प्रसिद्ध कर रहा हूँ। महावीर जी के मेले के बाद आचार्यश्री देशभूषण जी महाराज ने वापस लखनऊ की ओर प्रस्थान कर दिया। टिकैतनगर के भाक्तिक श्रावकों का चातुर्मास हेतु अत्यधिक आग्रह होने से दीक्षा के बाद प्रथम चातुर्मास टिकैतनगर में

हुआ। संघ में क्षुल्लिका वीरमती जी के साथ क्षुल्लिका ब्रह्मामती जी थीं और इस चातुर्मास में नवदीक्षित क्षुल्लिका वीरमती माताजी ने अनेक ग्रन्थों का अभ्यास किया। सन् 1953 के चातुर्मास के पश्चात् विशालमती क्षुल्लिका संघ में आ गईं, इनका स्नेह क्षुल्लिका वीरमती जी के प्रति बहुत था कारण कि छोटी उम्र और फिर विशिष्ट क्षयोपशम आदि गुणों में प्रेम प्रायः सभी को होता ही है।

टिकैतनगर चातुर्मास में बहुत धर्मध्यानपूर्वक समय व्यतीत हुआ। इसके पश्चात् संघ का चातुर्मास जयपुर में हुआ, यहाँ आगमन के समय बहुत ही भव्य स्वागत किया था तथा हजारों की तादात में भीड़ लगी रहती थी। यहाँ पर वीरमती क्षुल्लिका ने दो महिने में पूरी 'कातन्त्रव्याकरण' पढ़ ली थी। पढ़ाने वाला हैरान था कि मैं कितना पाठ याद कराऊँ, कितना पाठ पढ़ाऊँ परन्तु पढ़ने वाली वीरमती जी को पढ़ने की भस्मक व्याधि थी, चाहे जितना पढ़ाओ, सब आत्मसात् हो जाता था इतनी तीव्र बुद्धि और पढ़ने की लगन थी।

पढ़ने की तीव्र इच्छा होने से बड़ी चिंतित रहती थीं। इस स्थिति को देखकर विशालमती माताजी ने आचार्यश्री को कहा–महाराज जी! इनकी पढ़ाई का कुछ प्रबन्ध कीजिये।

आचार्यश्री ने कहा–इसकी इतनी छोटी उम्र है, आजकल का जमाना बड़ा खराब है, पण्डितों से पढ़ाने में कोई उंगली उठा सकता है ये स्वयं ही श्लोकादि याद करके अपने ज्ञान को बढ़ायें, यही ठीक है, चिन्ता नहीं करनी चाहिए। परन्तु संस्कृत ग्रन्थों को पढ़कर समझने के लिए व्याकरण की आवश्यकता होती है। अतः पुनः विशालमती माताजी ने अत्यधिक अनुनय–विनय से महाराज जी को इस कार्य के लिए राजी किया। आचार्यश्री ने स्थानीय पंडितप्रवर इन्द्रलाल जी शास्त्री से कहा–

पंडित जी! मेरी शिष्या वीरमती जी को आप संस्कृत व्याकरण पढायें।

पंडित जी ने आचार्यश्री की आज्ञा को शिरोधार्य किया और इनको अध्ययन कराना शुरू कर दिया। विशालमती जी भी इनके साथ व्याकरण पढ़ने बैठ गईं। पंडित जी ने दो-तीन सूत्र पढ़ाये और खूब समझाया। उतनी ही देर में इनको वृत्ति सहित सूत्र और अर्थ याद हो गया, पुनः पंडित जी ने कहा–माताजी! इन सूत्रों को कल कंठस्थ सुनूँगा।

तब वीरमती जी ने कहा–पंडित जी! आप अभी सुन लो और आगे के 8-10 सूत्र और दे दो।

पंडित जी ने कहा–यह लोहे के चने हैं, हलुआ नहीं है। बस एक–दो सूत्र ही पढ़ो और याद करो, ज्यादा हविस मत करो। इस प्रकार दो–तीन दिन तक तो इसी क्रम से पढ़ा परन्तु 'वीरमती' को संतोष नहीं था। पश्चात् विशालमती जी के आग्रह

से आचार्यश्री ने दूसरे पंडित की व्यवस्था की। परन्तु ये दूसरे पंडित जी भी पढ़ाने में असफल हुए। तब पं.इन्द्रलाल शास्त्री आदि अनेक महानुभावों ने विचार किया कि इन्हें तो व्याकरण पढ़ने की भस्मक व्याधि है इसलिए कोई वृद्ध ब्राह्मण विद्वान, जो पचास सूत्र पढ़ा सके तथा जिसको व्याकरण कंठस्थ हो, ऐसे पंडित की व्यवस्था करना चाहिए।

उस समय जैन कालेज में कातन्त्ररूपमाला व्याकरण को पढ़ाने वाले दामोदर शास्त्री थे, उनको पढ़ाने के लिए बुलाया गया और आचार्यश्री के सामने उनका परिचय दिया गया। पंडित इन्द्रलाल जी बोले–

आचार्यश्री! ये पंडित जी ही इन्हें व्याकरण पढ़ा सकते हैं क्योंकि इन्हें व्याकरण के सारे सूत्र याद हैं, रात-दिन ये व्याकरण ही पढ़ाते हैं। उसी समय आचार्यश्री ने वीरमती माताजी को बुलाया और विनोदपूर्ण शब्दों में बोले–

वीरमती! देखो ये विद्वान दामोदर शास्त्री जी तुम्हें व्याकरण पढायेंगे, ये जैन कॉलेज में कातन्त्ररूपमाला संस्कृत व्याकरण को दो साल में पढ़ाते हैं क्योंकि दो साल का इसका कोर्स है। तुम तो दो महीने में इसे पूरी करोगी? इन्होंने कहा–जैसी आपकी आज्ञा होगी, वैसा ही करूँगी।

इसी बीच पंडित दामोदर जी बोले–पूज्य महाराज जी! मैं प्रतिदिन एक घण्टा समय दे सकता हूँ इससे अधिक नहीं क्योंकि मेरे पास अधिक समय नहीं है। उसी समय विशालमती माताजी बोलीं–ठीक है, कल से ही इनका व्याकरण शुरू कर दीजिये, मुझे भी व्याकरण की रुचि है।

दूसरे दिन से कातन्त्ररूपमाला का अध्ययन शुरू हो गया। जितना पंडित जी पढ़ाते, उसका उसी समय मनन हो जाता, यदि पंडित जी पूछते तो विधिवत् सूत्रोच्चारण पूर्वक बतला दिया जाता था। विशालमती माताजी आश्चर्य से कहा करतीं–अम्मा! तुमने पूर्वजन्म में अवश्य व्याकरण पढ़ी है ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि एक पाठी के समान तुम्हें व्याकरण याद हो जाती है, तुमको रटना तो पड़ता ही नहीं।

क्षुल्लिका वीरमती जी को भी स्वयं ऐसा लगता कि वास्तव में मैंने यह व्याकरण पढ़ी ही होगी। यही कारण था कि न तो इनको यह व्याकरण कठिन ही लगती थी, न लोहे के चने ही लगते थे। ये सोचतीं कि विद्वान लोग व्याकरण को लोहे के चने क्यों कहते हैं?

इनको इस व्याकरण पर बहुत ही प्रेम था क्योंकि यह सरल थी और आचार्य की कृति थी अतः इनकी और विशालमती जी की प्रेरणा से आचार्य देशभूषण जी महाराज के आदेश से खंडाका सरदारमल जी ने वीर प्रेस में उसी समय यह

व्याकरण छपवाई थी। पढ़ने की अत्यधिक रुचि थी, अंतराय भी बहुत आते, स्वाध्याय भी सारे दिन-रात बहुत करती थीं। यद्यपि दिन में व्याकरण के सूत्र नहीं रटती थीं परन्तु स्वप्न में अनेक रूपों की सिद्धि कर लिया करतीं। एक रूप को सिद्ध करने में जो-जो सूत्र काम में आते थे प्रायः सोकर उठकर पुस्तक में देखतीं तो वे सभी सूत्र मिल जाते थे, ये हैं पूर्व जन्म के संस्कार कि बिना याद किये भी स्वप्न में सारे सूत्र याद हो जाते थे।

विशालमती माताजी आचार्यश्री से कहतीं – महाराज जी! वीरमती अम्मा व्याकरण पढ़ने के बाद कभी एक बार भी किताब उठाकर नहीं देखती हैं और रात्रि में स्वप्न में सारे सूत्र याद कर लिया करती हैं। तब पास में बैठे हुए कन्हैयालाल शास्त्री आदि कहते, इन्होंने पूर्वजन्म में सब कुछ पढ़ा है इसलिए बिना याद किये भी याद हो जाता है।

इनकी योग्यता को देखकर इन्द्रलाल शास्त्री कहते–इनको 'व्युत्पन्नमती' कहा करो, इनका 'व्युत्पन्नमती' यह नाम सार्थक है।

इन्होंने व्याकरण को दो महिने में एक दिन पहले ही पूरा कर लिया था। व्याकरण पूरी होने पर विशालमती माताजी आचार्यश्री के पास आशीर्वाद दिलाने ले गईं। आचार्यश्री ने कहा–बस, इतने मात्र व्याकरण से तुम सब शास्त्रों को समझ लोगी, अब तुमको किसी से कुछ पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद आचार्यश्री ने दामोदर शास्त्री को यथोचित पुरस्कार देकर शास्त्री जी से कहा–पंडित जी! बस आपका कार्य हो चुका, उस समय पंडित जी बहुत ही दुःखी हुए और बोले–गुरुदेव! मैं इन माताजी को और भी कुछ पढ़ाकर सेवा करना चाहता हूँ।

आचार्यश्री ने कहा–पुनः सोचा जायेगा।

व्याकरण के अध्ययन से इनकी भी बहुत कुछ इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। इसी जयपुर के चातुर्मास में सुना कि 'चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज सल्लेखना लेने वाले हैं' यह सुनकर इन वीरमती माताजी को आचार्यश्री के दर्शन करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई और चातुर्मास के बाद वहाँ दक्षिण जाने का विचार बना लिया और जब तक उन महान गुरुदेव के दर्शन नहीं होंगे, तब तक के लिए नमक का त्याग कर दिया और विशालमती माताजी से बार-बार दर्शन कराने के लिए आग्रह करना शुरु कर दिया, तब उन्होंने आचार्यश्री के पास निवेदन किया।

गुरुदेव! वीरमती माताजी ने नमक का त्याग कर दिया है, ये कहती हैं कि जब मैं आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के दर्शन करूँगी, तभी नमक लूँगी। आचार्यश्री ने सल्लेखना ले ली है यदि इनके दर्शन न हुए तो इनका आजीवन नमक का त्याग हो जायेगा।

आचार्यश्री ने कहा–ठीक है, चातुर्मास के बाद मैं तुम्हारे साथ इन्हें भेज दूँगा, तुम इन्हें दर्शन कराकर वापस मेरे पास ले आना।

विशालमती जी ने यह बात स्वीकार कर ली, तब इन्हें बहुत खुशी हुई। चातुर्मास के पश्चात् इन्होंने पता लगाया कि आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज कहाँ पर हैं? यह पता लगने पर नीरा गाँव की तरफ प्रस्थान कर दिया।

उस समय आचार्यश्री नीरागाँव में ही विराजमान थे, यहाँ आकर आचार्यश्री के दर्शन किये। आचार्यश्री ने क्षुल्लिका वीरमती जी का परिचय पूछा, तब विशालमती माताजी ने सब बताया और इनकी उम्र भी बतलाई, उस समय उम्र 19-20 वर्ष की थी। दीक्षा के समय की दृढ़ता के विषय में बतलाया, तो आचार्य महाराज बहुत ही प्रसन्न हुए और इनको शिक्षायें दीं वे बोले–

अभी तुम्हारी उम्र छोटी है, तीस साल तक किसी न किसी के साथ रहना, खूब अध्ययन करना, अनगार धर्मामृत, भगवती आराधना और समयसार का अध्ययन अवश्य करना, आचार्यश्री ने कहा–मैंने भगवती आराधना का 36 बार स्वाध्याय किया है इत्यादि रूप से बहुत शिक्षा दी। आचार्यश्री से आशीर्वाद ग्रहण कर वहाँ से निकलकर जयपुर आ गये। यहाँ से चाकसू आकर आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज के दर्शन किये पश्चात् अपने दीक्षागुरु आचार्य देशभूषण जी महाराज, जो जोबनेर में विराजमान थे, वहाँ पहुँच गये और जितना भी भ्रमण किया था, सब समाचार सुना दिये।

एक दिन समाचार ज्ञात हुआ कि आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज इसी वर्ष सल्लेखना ग्रहण करेंगे?

तब पुनः विशालमती और वीरमती इन दोनों ने आपस में परामर्श किया कि हम सोलापुर प्रान्त में ही चातुर्मास करें जिससे आचार्यश्री की सल्लेखना देखने का सुअवसर मिल सकेगा। ऐसा निर्णय करके ये दोनों फलटन पहुँच गईं। आचार्यश्री के दर्शन श्रुतपंचमी को हुए। उस दिन षट्खंडागम सूत्रों को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवाकर प्रतिष्ठा करायी थी, वे ग्रन्थ आज भी फलटन के सरस्वती भंडार में विराजमान हैं, उन ग्रन्थों के भी दर्शन किये।

आचार्यश्री का अन्तिम चातुर्मास —चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज अब कुंथलगिरि में यमसल्लेखना लेने वाले हैं, अब उनका यह अन्तिम विहार है।

इस प्रसंग पर ये वीरमती जी, क्षुल्लिका विशालमती जी के साथ आचार्यश्री के दर्शन करने बारामती आ गई थीं। भक्तजन चातकपक्षी के समान आचार्यश्री के मुखकमल की ओर एकटक से निहारा करते थे कि आचार्यश्री के मुख से कुछ भी अमृतकण निकले और सुनकर आनंद प्राप्त हो।

क्षुल्लिका वीरमती जी के भाव आर्यिका दीक्षा लेने के थे अतः इन्होंने विशालमती जी से कई बार कहा कि आचार्यश्री से मुझे आर्यिका दीक्षा दिला दो। परन्तु वे कहतीं–अम्मा! अभी कुछ दिन ठहरो, हम दोनों एक साथ ही आर्यिका दीक्षा लेवेंगे।

एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में इन्होंने निर्धूम अग्नि देखी। प्रातः विशालमती माताजी से स्वप्न के विषय में कहा, तब उन्होंने कहा–अम्मा! तुमको सच्चा वैराग्य है, अब मैं तुम्हें आगे बढ़ने से नहीं रोकूँगी।

अवसर पाकर वीरमतीजी ने आचार्यश्री से प्रार्थना की और कहा–गुरुदेव! मुझे संसार समुद्र से पार होने के लिए आर्यिका दीक्षा प्रदान कीजिये।

तब आचार्यदेव ने बहुत ही कोमल शब्दों में कहा–

अब मैंने दीक्षा नहीं देने का नियम ले लिया है। तुम मेरे शिष्य नेमिसागर या वर्धमान सागर के पास दीक्षा ले लो अथवा तुम्हें तुम्हारे शरीर, स्वास्थ्य और भाषा आदि के अनुकूल उत्तरप्रांत ठीक रहेगा, वहाँ वीरसागर जी महाराज हैं, उनके संघ में वयोवृद्ध आर्यिकायें भी हैं। तुम उसी संघ में जाकर दीक्षा लेओ तो अच्छा रहेगा क्योंकि अभी इस प्रान्त में कोई भी आर्यिकायें नहीं हैं।

एक दिन आचार्यदेव ने रेल, मोटर में बैठने वाले क्षुल्लक-क्षुल्लिका के प्रति अनादर भाव व्यक्त किये। तब विशालमती जी ने कहा–महाराज श्री! ये वीरमती तो कतई रेल, मोटर में बैठना नहीं चाहतीं, इनके गुरु देशभूषण जी महाराज 20-20 मील चलते हैं उन्होंने जबर्दस्ती इन्हें बैठने का आदेश दिया है।

क्षुल्लिका वीरमती जी ने उसी समय यह नियम कर लिया कि इस चातुर्मास के बाद बाहुबली की यात्रा करके जिन गुरु से आर्यिका दीक्षा लेनी है, वहाँ पहुँचने तक ही मैं रेल, मोटर में बैठूँगी उसके पश्चात् यावज्जीवन वाहन का त्याग करती हूँ।

इस त्याग से भी आचार्यश्री बहुत प्रसन्न हुए और बोले–इसके परिणाम बहुत ही कोमल हैं, यह निकट भव्य है। बहुत कुछ शिक्षा भी दी थीं।

वहाँ आचार्यश्री के विहार के समय बहुत ही सुन्दर रथ निकाला था जिसे देखने के लिए दूर-दूर तक के गाँवों के लोग आये थे क्योंकि सभी को यह विदित था कि आचार्य श्री का यह अन्तिम विहार है।

आचार्यश्री कुंथलगिरि पहुँचकर पुनः इस पर्याय में विहार नहीं करेंगे।

क्षुल्लिका विशालमती जी और क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1955 का चातुर्मास म्हसवड़ गाँव में किया और वहाँ इन्होंने ये सूचना भी दे दी थी कि आचार्यश्री की सल्लेखना देखने के लिए चातुर्मास के बीच में कुंथलगिरि में जाकर रहेंगी।

चातुर्मास में पढ़ने के लिए कुछ लड़कियाँ आती थीं। एक बार इन्होंने सुना कि जो प्रभावती लड़की पढ़ने आती है, वह शादी नहीं करना चाहती। क्षुल्लिका

वीरमती जी ने एकान्त में उसको बुलाकर पूछा, तब प्रभावती ने इतना ही कहा कि मैं स्वतंत्र रहना चाहती हूँ, इसीलिए विवाह नहीं करना चाहती और कुछ भी उद्देश्य नहीं बतलाया।

तत्पश्चात् इन्होंने कहा–यदि तुम्हें गृहस्थाश्रम में नहीं रहना है तो मेरे साथ चलो, पढ़-लिखकर कल्याण का मार्ग ग्रहण करो।

धीरे-धीरे प्रभावती प्रभावित होने लगी।

इस वर्ष दो भाद्रपद थे, प्रथम भाद्रपद में क्षुल्लिका वीरमती जी ने रात्रि के पिछले प्रहर में स्वप्न देखा कि मानस्तंभ के ऊपर का भाग गिर गया है। विशालमती जी को भी स्वप्न आया कि सूर्य डूबता जा रहा है तदनन्तर दोनों ने विचार किया अवश्य ही किसी महापुरुष का प्रयाण होने वाला है।

दिन में समाचार मिला कि आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने कुंथलगिरि में यमसल्लेखना ग्रहण कर ली है, अब क्या था, इन दोनों ने कुंथलगिरि जाने का विचार किया। तब प्रभावती ने चिंतित होकर कहा–अम्मा, मेरा क्या होगा?

तब माताजी ने कहा–तुम चिंता मत करो, हम आचार्यश्री के दर्शन करके यहाँ पर ही आकर चातुर्मास का समापन करेंगे और तुमको अपने साथ लेकर यहाँ से विहार करेंगे।

यहाँ से दोनों क्षुल्लिका माताजी कुंथलगिरि पहुँचीं और आचार्यश्री के दर्शन कर प्रसन्न हुईं। यहाँ पर इतनी अपार भीड़ थी और ठहरने की समुचित व्यवस्था न होते हुए भी वहाँ से वापस जाने की इच्छा नहीं हुई और सल्लेखना होने तक वहीं रहने का विचार कर लिया।

एक दिन संघपति गेंदनमल, चंदुलाल जी सर्राफ, भट्टारक लक्ष्मीसेन जी, ब्र.सूरजमल जी बाबाजी आदि सभी से परामर्श करके आचार्यश्री ने अपना आचार्यपट्ट अपने प्रथम शिष्य वीरसागर जी महाराज को देना घोषित कर दिया और गेंदनमल जी से पत्र लिखवाकर ब्र.सूरजमल जी को दे दिया और कुंथलगिरि में भी विशाल सभा के समक्ष यह घोषित किया कि–

आज से अचार्यश्री की आज्ञानुसार सभी मुनि-आर्यिका और श्रावक-श्राविका मुनि श्री वीरसागर जी महाराज को ही अपना आचार्य स्वीकार करें। यह आचार्य पदारोहण दिवस भाद्रपद कृष्णा सप्तमी गुरुवार को मनाया गया एवं विशाल प्रांगण में हजारों जन समुदाय के बीच बड़े समारोह के साथ मुनि श्री वीरसागर जी महाराज को आचार्यपद प्रदान किया गया था। उसी समय पं.इन्द्रलाल जी शास्त्री ने गुरुदेव के द्वारा भिजवाया गया आचार्यपद प्रदान पत्र पढ़कर सुनाया था एवं श्रीशिवसागर जी ने आचार्य श्रीशांतिसागर जी महाराज द्वारा भेजे गये पिच्छी-कमंडलु को श्रीवीरसागर

जी के करकमलों में प्रदान किया। तत्काल सर्वत्र सभा में आचार्य श्रीवीरसागर जी महाराज का जयघोष आकाशपर्यंत गूंज उठा। इसके पहले वीरसागर जी महाराज ने कभी भी अपने को आचार्य शब्द से संबोधित नहीं करने दिया।

सन् 1955, 18 सितम्बर द्वितीय भाद्रपद सुदी दूज को रविवार प्रातः 6 बजकर 40 मिनिट पर आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने "ॐ सिद्धाय नमः" इस मंत्र का उच्चारण करते हुए इस नश्वर शरीर को छोड़कर स्वर्गारोहण किया।

माताजी बतलाती थीं कि उस समय हम दोनों, जिस कुटी में आचार्यश्री ने सल्लेखना ली थी, उस कुटी से कान लगाकर दरवाजे में खड़े हो गये थे और स्पष्ट मंत्रोच्चारण सुन रहे थे। एक घंटे बाद उनके पार्थिव शरीर को लाकर बाहर ऊँचे आसन पर विराजमान कर दिया था, उस समय पर भी वहाँ सर्पराज आया था तथा चिता के जलते समय भी आकर भीड़ कम होने पर चिता की तीन प्रदक्षिणा देकर चला गया। श्रद्धांजली सभा का आयोजन हुआ। इसके पश्चात् ये दोनों (विशालमती-वीरमती) क्षुल्लिका आचार्यश्री के अपरिमित गुणों का स्मरण करते हुए पुनः म्हसवड़ आ गईं। वैराग्य भावना से ओत-प्रोत होने के कारण वीरमती जी ने चातुर्मास में चावल के सिवाय सभी अन्न का त्याग कर दिया था। क्षुल्लिका विशालमती से विचार-विमार्श करके यह निर्णय कर लिया था कि चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री वीरसागर जी से ही आर्यिका दीक्षा लेना है।

इधर कु.प्रभावती के बढ़ते हुए विरक्त भावों को देखकर विशालमती जी ने कहा कि यदि तुमको सच्ची विरक्ति है तो घर में अपने केशों को काटकर सफेद साड़ी पहनकर मंदिर जी के तलघर में जिनप्रतिमा के सामने बैठ जाओ। घर में इनकी नानी और मामी थी। भाई शांतिलाल पूना में रहते थे, माता-पिता तो बचपन में ही स्वर्गवासी हो गये थे।

प्रभावती दीपावली की पूर्वरात्रि–चतुर्दशी की पिछली रात्रि में अपने केशों को काटकर स्नान कर सफेद साड़ी पहनकर वहीं मंदिर जी में तलघर में प्रतिमा के सामने बैठ गईं। प्रातः उनकी नानी ने आकर यह दृश्य देखकर खूब हल्ला-गुल्ला करना शुरु कर दिया। पश्चात् प्रभावती ने कहा कि यह सब मैंने स्वयं किया है, तब वे शांत हो गईं। शाम को विशालमती जी ने वीरमती जी से कहा कि इस कन्या को आप संभालो और योग्य शिक्षा देकर सन्मार्ग में लगाओ, अब यह आपकी गोद में है। विशालमती ने कहा–अम्मा! इसे आपके ही पास रहना है, आपसे पढ़ना है अतः आप ही इसे दसवीं प्रतिमा के व्रत देओ। इनकी विशेष प्रेरणा होने से वीरमती जी ने कु.प्रभावती को दसवीं प्रतिमा के व्रत ग्रहण कराये। इसी समय सौ.सोनूबाई जो चातुर्मास में रात्रि में इनके पास ही रहती थीं इन्होंने अपने पति से आज्ञा लेकर छठी

प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। उसी दिन चतुर्दशी की पिछली रात्रि में माताजी ने वर्षायोग का समापन कर दिया था। अष्टान्हिका के बाद वहाँ से मुम्बई आदि स्थानों के दर्शन करते हुए जयपुर की ओर प्रस्थान किया, उस समय विशालमती जी को छोड़ना पड़ा, तब इनको बहुत ही दुःख हुआ था। क्योंकि विशालमती जी ने क्षुल्लिका वीरमती जी को बहुत ही वात्सल्य दिया था अब ये कु.प्रभावती, सौ.सोनूबाई को लेकर जयपुर आचार्यश्री वीरसागर जी के चरणों में आ गईं तथा दर्शन करके मन बहुत ही प्रसन्न हुआ। आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने क्षुल्लिका वीरमती जी को आदेश दिया कि तुम वीरसागर जी से आर्यिका दीक्षा लेना। आचार्य श्री का आदेश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज को सुनाया तथा आर्यिका दीक्षा की प्रार्थना की ।

आचार्यश्री ने कहा–अभी ठहरो, संघ में रहो, सब साधुओं के स्वभाव का अनुभव करो और वे भी तुम्हारी चर्या को देखेंगे। तदनन्तर दीक्षा हो जायेगी। तत्पश्चात् ये आर्यिकाओं के साथ पाटोदी मंदिर में ठहर गईं। एक वृद्ध माताजी ने इनसे पूछा–वीरमती जी! तुम प्रतिक्रमण करती हो? इन्होंने कहा–हाँ माताजी! दोनों समय करती हूँ।

उस समय संघ में प्रातः काल एक बार ही प्रतिक्रमण होता था। उन्होंने कहा–प्रातः 7 बजे आकर मुझे सुनाना। वीरमती जी ने कहे अनुसार आकर के प्रतिक्रमण सुनाया, कंठस्थ प्रतिक्रमण को सुनकर वे बहुत ही हर्षित हुईं और आश्चर्य करने लगीं। तीन दिन बाद आचार्यश्री ने माताजी से पूछा–क्षुल्लिका वीरमती की चर्या कैसी है?

माताजी ने कहा–आचार्यश्री! इसका ज्ञान बहुत अच्छा है, प्रतिक्रमण एवं सारी भक्तियां आदि सब मुखाग्र याद हैं, विनय भी अच्छी है।

आचार्य महाराज का यह कहना था कि कम से कम छह महीने संघ में रहना चाहिए, तब दीक्षा देंगे। सो ये भी गुरू की आज्ञानुसार संघ की सभी क्रियाओं में भाग ले रही थीं और अपने पठन-पाठन में लगी हुई थी। यद्यपि इनकी भावना इतनी उत्कट थी कि दीक्षा बिना एक-एक दिन भी वर्ष के समान लग रहे थे फिर भी शांति के सिवाय उपाय क्या था।

पुनः आचार्यश्री ने कहा–इनके गुरु देशभूषण जी से तो अनुमति मंगाना चाहिये, मैं दूसरे के शिष्य को उनकी आज्ञा के बिना कैसे दीक्षा दे सकता हूँ?

तब क्षुल्लिका वीरमती जी ने कहा–महाराज जी! उन्होंने तो अनेक बार कहा था कि आचार्य वीरसागर जी के संघ में तुम आर्यिका दीक्षा लेओ,

क्योंकि उनके संघ में वयोवृद्ध आर्यिकायें भी हैं और संघ के साधु विहार भी हमारे समान 20-20 मील नहीं करते हैं। फिर भी आचार्यश्री ने आज्ञा मंगाने के लिए गुरु के पास पत्र भेजा, रामचन्द्र जी कोठारी ने भी स्वीकृति के लिए पत्र डाल दिया। कुछ दिन बाद उनका स्वीकृति पत्र आ गया।

पुनः कुछ दिन बाद आचार्यश्री ने जयपुर से संघ सहित विहार किया और माधोराजपुरा में आ गये। यहाँ पर पुनः इन्होंने आचार्यश्री से प्रार्थना की कि–हे गुरुदेव! अब हमें महावीर जयंती पर आर्यिका दीक्षा दे दीजिये।

आचार्यश्री ने संघस्थ साधुओं से परामर्श किया, सभी साधुओं ने एक स्वर से सम्मति दी। पश्चात् महाराज ने सूरजमल बाबाजी से मुहूर्त निकालने को कहा। बाबाजी ने वैशाख वदी द्वितीया का उत्तम मुहूर्त निकाल कर दिया तथा दीक्षा की घोषणा कर दी।

गाँव के अंदर उत्सव मनाना प्रारंभ हुआ। अपनी शिष्या कु. प्रभावती से माताजी ने क्षुल्लिका दीक्षा का नारियल चढ़वाया। दीक्षा का दिन अति उत्तम था, भगवान पार्श्वनाथ के गर्भकल्याणक का दिन था। विशाल पांडाल के मंच पर क्षुल्लिका वीरमती का केशलोंच प्रारंभ हुआ अनंतर आचार्यश्री ने दीक्षा के संस्कार प्रारंभ किये। इनको आर्यिका दीक्षा दी तथा प्रभावती को क्षुल्लिका दीक्षा दी। इसी बीच एक चमत्कार हुआ। एक बैल दौड़ता हुआ सभा के मध्य आ गया। सभा में हल्ला मच गया किन्तु वह बीच के रास्ते से मंच के पास आ गया और आकर खड़ा हो गया। पश्चात् मस्तक टेक दिया और बहुत देर तक एकटक से देखता रहा। सूरजमल बाबाजी ने सभा के कोलाहल को एकदम शांत कर दिया था। बाबा जी ने कहा–'कोई डरो मत' यह तो कोई भव्य जीव है जो दीक्षा देखने आया है। दीक्षा संस्कार के बाद वह शांत भाव से बीच के रास्ते से चला गया, लोगों ने उसे लड्डू खिलाये थे। आचार्यश्री ने इनका **ज्ञानमती** सार्थक नाम रक्खा तथा कु.प्रभावती का नाम क्षुल्लिका जिनमती रखा। संघ में सभी आर्यिकायें इनके साथ वात्सल्यपूर्ण व्यवहार रखती थीं क्योंकि दीक्षा के पूर्व इनको अच्छी तरह से कसौटी पर कसा था, इन्होंने पूर्ण धैर्य और सहनशीलता से सभी वातावरण को सहर्ष झेला था। यह था इनके पूर्ण वैराग्य, महानता का परिचय, जो अथक परिश्रम से सफल कर लिया और आर्यिका ज्ञानमती माताजी बन गईं। अब ये क्षुल्लिका जिनमती जी तथा अन्य आर्यिकाओं को पढ़ाने का कार्य करने लगीं। इनके ज्ञान से सभी प्रभावित थे। इनका समय अध्ययन-अध्यापन में ही व्यतीत होता था। संघ में अनेक पंडित आते थे, वे इनके ज्ञान, बुद्धि और अध्ययनशीलता को देखकर बहुत ही प्रभावित होते थे। पंडित खूबचंद्र शास्त्री

संघ में आहारदान और ज्ञानदान के लिए आते रहते थे। माताजी ज्ञानार्णव का स्वाध्याय कर रही थीं, उस समय बारह भावना का प्रकरण आया, बहुत रुचिपूर्ण होने से इन्होंने उस की संस्कृत टीका करना प्रारंभ कर दिया, चार-पाँच भावनाओं की टीका लिखकर पं.खूबचंद्र जी को दिखाई, पंडित जी व्याकरण की शुद्धि और लेखन शैली को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और आचार्यश्री को ले जाकर दिखाई और बोले–महाराज जी! इन ज्ञानमती आर्यिका का संस्कृत ज्ञान कितना सुन्दर है, टीका शैली बिलकुल सही है। ये एक दिन अच्छी विदुषी प्रख्यात होंगी। यह सुनकर आचार्यश्री प्रसन्न हुए। यह सन् 1956 की बात है। माताजी के साथ सौ.सोनूबाई थीं उन्होंने भी अपने पति से दीक्षा की आज्ञा ली तथा जयपुर में क्षुल्लिका दीक्षा हुई, इनका नाम पद्मावती रखा, ये व्रत-उपवास बहुत करती थीं।

आचार्यश्री ने एक दिन आर्यिकाओं को आज्ञा दी कि चातुर्मास से पहले तक तुम सब दो ग्रुप में विहार करो। गुरु आज्ञा से आर्यिका वीरमती माताजी ने विहार का निर्णय किया। ज्ञानमती माताजी ने भी इच्छा नहीं होते हुए भी गुरु आज्ञा अलंघनीय होती है, ऐसा विचार कर बगरू ग्राम में जाने का निर्णय किया। विहार करने के समय आचार्यश्री से आशीर्वाद लेने गईं, तब उन्होंने कहा–बाई! तुम्हें मैं और कुछ नहीं कहूँगा, बस एक ही बात कहता हूँ कि तुम हमेशा अपने नाम का ध्यान रखना।

इतना सुनकर ब्रह्मचारी काव्य तीर्थ पं.श्रीलाल जी बोले–

आचार्यश्री! आपने सभी वृद्ध आर्यिकाओं को तो विहार के समय अनेक शिक्षायें दी थीं इन्हें मात्र दो ही शब्दों में कह रहे हैं कि "अपने नाम का ध्यान रखना" अन्य कोई शिक्षा नहीं, ऐसा क्यों? जबकि ये तो सबसे छोटी हैं और नवदीक्षित हैं।

तब आचार्यश्री ने कहा–भाई! मैंने एक शब्द में ही इन्हें शिक्षा दे दी है। बस इनके लिए मुझे इतना ही कहना है और कुछ नहीं। गुरुदेव की इतने छोटे से वाक्य की अमूल्य शिक्षा को इन्होंने हृदय में धारण किया और गुरु का आशीर्वाद लेकर विहार किया। उस समय साथ में क्षुल्लिका जिनमती जी और पद्मावती जी थीं। बगरू में इनका अच्छा स्वागत हुआ। यहाँ पर पहले से ही क्षुल्लक सन्मतिसागर जी थे। कुछ दिन बाद मुनि श्री शिवसागर जी, क्षुल्लक चिदानंदसागर जी भी बगरू आ गये। इस निमित्त से यहाँ अच्छी धर्मप्रभावना हुई। यहाँ से विहार कर झाग, मोजमाबाद से चौरु आ गये। यहाँ पर आचार्यश्री को अतिसार रोग हो गया, ऐसा समाचार आया, दो-तीन दिनों में सभी साधु-साध्वियाँ आचार्यश्री के चरणों में आ पहुँचे। सभी त्यागियों को सकुशल देखकर आचार्यश्री प्रसन्न हुये। आचार्यश्री स्वयं एक घंटा स्वाध्याय करते थे और सभी त्यागीवृंद शास्त्र सुनते थे, शास्त्र के माध्यम से अनेक

प्रकार की शिक्षायें मिलती थीं तथा समयोचित अनेक शंकाओं का समाधान होता था और भी साधुजन स्वाध्याय में निरत रहते थे। माताजी भी अध्ययन का कार्य करती थी इस प्रकार आचार्यश्री की छत्र-छाया में अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग चल रहा था। आचार्यश्री के दर्शनार्थ सम्मेदशिखर जी से विहार करते हुए आचार्य महावीरकीर्ति जी महाराज ससंघ पधारे, उन्होंने अपने गुरु के दर्शन कर अपने को कृतार्थ किया तथा अन्य सभी साधुगणों ने उनके दर्शन कर अपने को धन्य माना। महावीरकीर्ति जी महाराज ने क्षुल्लक दीक्षा आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से ली थी अतः वे इनको अपना गुरु मानकर सल्लेखना के समय का लाभ लेने आये हुए थे। इनमें गुरु–भक्ति अपार थी।

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज का स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा था, फल-रसों का त्याग कर चुके थे। मात्र मट्ठा और गेहूँ का चूरमा लेते थे।

आश्विन कृष्णा चतुर्दशी के दिन पाक्षिक प्रतिक्रमण हो रहा था, आचार्यश्री स्वयं पुस्तक लेकर प्रतिक्रमण बोल रहे थे, सभी को प्रायश्चित्त दिया था, ये उनके श्रीमुख से दिया गया अंतिम प्रायश्चित्त था।

अगले दिन आश्विन कृष्णा अमावस्या को आचार्यश्री आहार को उठना नहीं चाहते थे परन्तु बाबाजी, चाँदमल जी गुरुजी और अन्य साधुओं के विशेष आग्रह से, विशेष निवेदन करने से, कि आप आहार को नहीं उठेंगे तो हम भी कोई आहार को नहीं उठेंगे, पहले दिन का बहुत से साधुओं का उपवास भी था अतः आचार्यश्री को दया आ गई और आहार को उठ गये। पास में पड़गाहन हो गया। श्रावकों ने नवधा भक्ति की, आचार्यश्री आहार के लिए खड़े हो गये। उन्होंने एक अंजुलि जल लिया और बैठ गये, चतुराहार का त्याग कर अपनी वसतिका में आ गये। उनको लिटा दिया गया किन्तु वे उठकर ध्यान मुद्रा में बैठ गये। उनके निकट सूरजमल जी बाबाजी थे और पं. खूबचंद जी शास्त्री थे। इन दोनों ने देखा कि आचार्यश्री ने आँखें बंद कर ली हैं, तब वे उच्चस्वर से णमोकार मंत्र बोलने लगे। उस समय साधु आहार को जा रहे थे, कोई जल्दी से आहार करके आ गये। धीरे-धीरे सभी साधुजन आ गये, आचार्यश्री की श्वांस धीरे-धीरे चल रही थी। कुछ समय पश्चात् आचार्यश्री का स्वर्गारोहण हो गया। यह देखकर सबका हृदय शोक से व्याकुल हो गया, अंत में संसार की स्थिति का विचार कर सभी ने धैर्य धारण किया।

जयपुर शहर में आचार्यश्री की समाधि का समाचार पहुँचते ही सारी समाज उमड़ पड़ी और राणाजी की नशिया से बाहर के प्रांगण में आचार्यदेव के पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार ब्र.सूरजमल जी के द्वारा संपन्न किया गया।

आचार्य वीरसागर जी के स्थान पर आचार्य शिवसागर जी महाराज को नवीन

गुरु के रूप में पाकर सभी त्यागियों ने संतोष का अनुभव किया और उनको पुनः पुनः नमस्कार किया। आचार्य शिवसागर जी महाराज ने भी वात्सल्य भाव से आशीर्वाद दिया और बोले–

आप सभी लोगों ने मिलकर मुझे आचार्य तो बना दिया है किन्तु मुझमें इतनी योग्यता तो है नहीं। अनुभव ज्ञान भी नहीं है, क्योंकि अभी तक तो मैं मात्र स्वाध्याय में ही संलग्न रहा हूँ अतः इस आचार्य पद की शोभा बढ़ाना, गुरुदेव के गुरुतर भार केा संभालने की क्षमता मेरे होना यह सब आप साधुओं पर ही निर्भर है।

इस प्रकार उनकी लघुतामयी वाणी सुनकर सभी साधुजन प्रसन्न हुए और बोले–महाराज जी! पद के आने के बाद उस पद के अनुरूप योग्यता आ जाती है।

गिरनार यात्रा हेतु प्रस्थान — नूतन आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज ने विचार बनाया कि गुरुदेव के वियोग को भुलाने के लिए अब हम लोग एक सिद्धक्षेत्र की यात्रा करें। सभी के हृदय में गिरनार पर्वत के दर्शन की भावना जाग्रत हो रही थी। विचार-विमर्श के अनुसार सारे संघ का एक निर्णय हुआ और यात्रा कराने का भार निवाई ग्राम निवासी सेठ हीरालाल जी पाटनी ने सहर्ष धारण किया। आचार्यश्री के समक्ष श्रीफल चढ़ाकर हीरालाल जी ने निवेदन किया–

महाराज जी! हम आपको चतुर्विध संघ सहित गिरनार क्षेत्र की यात्रा कराना चाहते हैं। स्वीकृति प्रदान कीजिये।

आचार्यश्री की स्वीकृति होते ही संघ के प्रमुख ब्र.सूरजमल जी ने उन्हें संघपति नाम से संबोधित किया। यह सन् 1957 की बात है।

शुभ मुहूर्त में आचार्यश्री ने अपने विशाल चतुर्विध संघ सहित गिरनार यात्रा के लिए गुजरात की ओर प्रस्थान कर दिया।

अजमेर —संघ का विहार अजमेर की तरफ हुआ। सरसेठ भागचंद्र जी सोनी का संघ में आवागमन चालू हो गया। वे चाहते थे कि संघ अजमेर में हमारी नशिया जी में ही ठहरे। उनकी भावना सफल हुई और संघ के साधु सोनीजी की नशिया में ठहरे और आर्यिकायें पृथक् स्थान पर ठहरीं। अजमेर में बहुत जोरदार स्वागत हुआ था। आचार्यश्री ने एक दिन ज्ञानमती माताजी का नशिया में प्रवचन करा दिया। प्रवचन के बाद मध्याह्न में भी कई लोगों ने आचार्यश्री से प्रार्थना की कि महाराज जी! ज्ञानमती माताजी का यहाँ शहर में एक दिन सार्वजनिक सभा में प्रवचन करा दीजिये, बहुत लोग चाहते हैं। इस प्रार्थना में सेठ भागचंद्र जी भी थे। आचार्य श्री ने मुस्कराते हुए मौन स्वीकृति दे दी किन्तु किन्हीं ईष्यालुओं ने यह कहा कि क्या संघ में एक ज्ञानमती ही हैं और कोई साधु नहीं हैं? बात समाप्त हो गई। जो धर्मप्रभावना के इच्छुक थे, वे दुःखी हुए। माताजी ने सोचा कि मैंने तो अपने ध्यान-अध्ययन एवं

संसार बंधन से छूटने के लिए दीक्षा ली है, मुझे लोक प्रभावना से क्या प्रयोजन है?

माताजी मार्ग में विहार करते हुए विश्राम करने के लिए किसी वृक्ष की छाया में बैठती थीं, तब क्षुल्लिका जिनमती माताजी को गोम्मटसार की छह गाथायें पढ़ा देतीं, इस प्रकार दो-तीन बार में छह श्लोक आप्तमीमांसा, छह श्लोक समाधिशतक के पढ़ा देतीं। प्रायः प्रतिदिन अठारह श्लोक पढ़ाती थीं और उन्हें क्षुल्लिका जिनमती माताजी रात्रि में याद करके सुना देती थीं। यदि कदाचित् याद नहीं हो पाता तो माताजी याद करवाकर सुनकर ही सोती थीं। उस समय संघ का विहार दोनों समय होता था, 15-16 मील की चलाई हो जाती थी, माताजी का स्वास्थ्य शुरु से ही कमजोर था, शरीर कोमल था, थक जाने से पीछे भी रह जाती थीं किन्तु समय पर गंतव्य स्थान पर पहुँच जाती थीं।

हिम्मत हारना तो माताजी जानती नहीं हैं, पुरुषों से भी अधिक पौरुष माताजी के अन्दर भरा हुआ है, उनके कार्य विश्वविख्यात हैं।

ब्यावर —अजमेर से विहार करता हुआ संघ ब्यावर पहुँचा और सेठ चंपालाल जी की नशिया में ठहराया गया। वहीं पर ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में आर्यिकायें ठहर गईं। वहीं पर पास में ही ज्ञानमती माताजी ठहरी थीं। ब्र.गणेशीलाल जी का पिछली रात्रि में स्वर्गवास हो गया, यह सुनकर सब स्तब्ध रह गये। इसके बाद यहाँ संघ दो-तीन दिन ठहरा पुनः गुजरात की ओर मंगल विहार हो गया। गुजरात में संघ का स्वागत जगह-जगह होता था। जहाँ दिगम्बर जैन के घर नहीं थे किन्तु श्वेताम्बर जैन थे, वे लोग आगे आकर संघ का स्वागत करते और अच्छी व्यवस्था बनाते थे।

संघपति हीरालाल जी निरभिमानी थे, मार्ग में खुले स्थानों में तम्बू-कनातें लगाई जातीं और वहाँ चौके लगाते, जंगल में एक गाँव जैसा लगने लगता, जब साधुओं का आहार होता, उस समय संघपति जी, सूरजमल जी बाबाजी हाथ में छड़ी लेकर चारों तरफ निगरानी रखते कि कोई भी जानवर अन्दर नहीं आ जाए। जब साधुओं का आहार हो जाता, तब प्रसन्न होते। सेठजी की पत्नी भी आटा हाथ से पीसना, पानी भरना आदि काम हाथों से करती थीं। जगह-जगह चर्चा होती कि एक सेठजी बहुत बड़े साधु संघ को गिरनार की यात्रा कराने के लिये निकले हैं। ऐसा सुनकर सब लोग दर्शन के लिए आते और पूछते कि इस संघ के व्यवस्थापक सेठ कौन से हैं?

लोग लकड़ी लेकर इधर-उधर घूमते हुए साधारण वेश में हीरालाल जी सेठ की ओर इशारा करते तो पूछने वाले आश्चर्यचकित हो जाते, अरे! ये सेठ जी ऐसा काम क्यों करते हैं इत्यादि।

सोनगढ़ —ये कोई तीर्थ क्षेत्र नहीं है। आचार्य शिवसागर जी अपने संघ के साथ जैसे ही सोनगढ़ पहुँचने को हुए कि कानजी भाई, चंपाबेन, शांता बेन आदिप्रमुख लोग वहाँ से राजकोट चले गये। जब संघ राजकोट पहुँचा तो वे रात में ही वहाँ से सोनगढ़ चले गये। वास्तव में निश्चयाभासी कानजी भाई अपने को तीर्थंकर मानने वाले भला दिगम्बर गुरुओं के कैसे दर्शन कर सकते थे? कांजीपंथ को चलाने वाले कानजी भाई की सोनगढ़ में मानस्तम्भ, मंदिर, सरस्वती भवन में मूर्ति उकेरी हुई है।

तारंगा सिद्धक्षेत्र —क्रम-क्रम से चलते हुए संघ तारंगा पहुँचा, वहाँ कोटिशिला और सिद्धशिला इन दोनों पर्वतों पर लगभग 900 वर्ष प्राचीन प्रतिमायें विद्यमान हैं, संघ के सभी साधु-साध्वियों, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी आदि ने वंदना की।

गिरनार सिद्धक्षेत्र —तारंगा से विहार करके संघ फाल्गुन सुदी में गिरनार पहुँच गया। तब सभी को अपार हर्ष हुआ क्योंकि पद विहार करते हुए मार्ग में अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए सकुशल तीन महीने में लगातार चलकर आ गये, मनोभावना सफल हुई। मार्ग में चलते समय प्रतिदिन निर्विघ्न यात्रा की भावना से "ॐ ह्रीं श्री अरिष्ट नेमिनाथाय नमः" इस मंत्र का जाप सभी साधु-साध्वियों ने किया। माताजी ने इस मंत्र का जाप्य सवा लाख से भी अधिक किया था तथा माताजी ने गिरनार यात्रा होने तक नमक का त्याग कर दिया था। इसके सिवाय और भी कई वस्तुओं का त्याग किया था, माताजी को रसों का त्याग और अन्नादि वस्तुओं के त्याग के प्रति बहुत रुचि रहती थी, मैंने तो गिरनार यात्रा के समय से ही देखा है कि माताजी अधिकतर कभी एक रस या दो रस, एक धान्य इस प्रकार से आहार में लेती रही हैं। शायद स्वाद को तो माताजी जानती ही नहीं होंगी, इस बात का मैंने कई बार विचार किया है क्योंकि आहार लेते समय कैसा भी रूखा-सूखा भोजन हो, चेहरे पर सौम्यता ही दिखाई देती थी जैसे कोई कितना स्वादिष्ट भोजन आहार में ले रही हों। मैं मन में विचार करती कि बिना नमक, मीठा, मिर्च मसाले के ऐसे ही माताजी कैसे आहार ले लेती हैं? जब कि इतनी छोटी उम्र है, फिर भी किसी प्रकार के स्वाद का नाम ही नहीं है, एकदम सरलता से आहार लेती हैं। फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को पहली वंदना सभी साधुओं ने की। दूसरी वंदना में चौथी टोंक की वंदना की थी, साहस किया। चौथी टोंक पर चढ़ने में प्रायः सभी डरते हैं, परन्तु ज्ञानमती माताजी ने निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, मुझे तो चौथे पहाड़ पर चढना ही है। इस पर्वत पर सहारे से ही चढ़ाया जाता है किन्तु माताजी तो बिना सहारे के ही चौथे पहाड़ पर चढ गईं और दूसरी साध्वियों को भी पकड़कर चढ़ा लिया। सभी ने वहाँ की वंदना की और अपने जीवन को धन्य माना। तारंगा से निकलते ही आचार्य श्री शिवसागर जी ने इनसे कई बार कहा "ज्ञानमती माताजी! मैं

गिरनार सिद्धक्षेत्र पर सर्वप्रथम बाल ब्रह्मचारियों को दीक्षा देना चाहता हूँ अतः आप ब्र.राजमल जी को तैयार करो और क्षुल्लिका जिनमती जी को तैयार करो या इनमें से किसी को भी तैयार करना जरूरी है। ब्र.राजमल जी प्रायः माताजी की विनय भक्ति करते थे। मार्ग में धीरे-धीरे चलने से इनका कमंडलु भी कभी-कभी लेकर चलते थे। यही कारण था कि आचार्यश्री शिवसागर जी ने दीक्षा की प्रेरणा के लिए माताजी को कहा था।

माताजी ने पृथक्-पृथक् दोनों को समझाया किन्तु कोई भी तैयार नहीं हुये। किन्तु क्षुल्लिका चन्द्रमती, क्षुल्लिका पद्मावती ये आर्यिका दीक्षा चाहती थीं अतः इन दोनों की आर्यिका दीक्षा हुई तथा ब्र.रूपाबाई की क्षुल्लिका दीक्षा हुई इनका नाम राजुलमती रखा।

माताजी ने बतलाया कि गिरनार क्षेत्र के दर्शन से तीन बातें विशेष स्मरणीय रही थीं–एक तो भगवान नेमिनाथ का पशुओं का बंधन छुड़ाकर वैराग्य, दूसरा श्री धरसेनाचार्य के द्वारा श्रुतपरम्परा को अविच्छिन्न रखने हेतु श्री पुष्पदंत-भूतबली मुनियों को पढ़ाया जाना और तीसरा श्री कुंदकुंददेव की वंदना में विवाद होने पर अंबिकादेवी का बोलना। गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ तीर्थंकर के तीन कल्याणक हुए–दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण। गिरनार से विहार कर जूनागढ़ के मंदिर के दर्शन किये और वहाँ से आगे बढ़े। विहार कर जहाँ रात्रि पड़ती, वहाँ संघ ठहर जाता, वृद्ध माताजी ज्ञानमती माताजी को कहतीं कि आपके मुख से पाठ सुनना बहुत अच्छा लगता है, तब कभी-कभी माताजी पाठ सुनाती थीं। रास्ते में चलते समय प्रायः वीरमती माताजी इनके साथ चलती थीं और माताजी पाठ बोलती जाती थीं इसलिए इनके साथ चलना अधिक पसंद करती थीं। संघ वहाँ से विहार करके शत्रुंजय पहुँचा, वहाँ की पवित्र भूमि की वंदना की, पहाड़ चढ़ते समय मार्ग में माताजी को छोटी उम्र की कुछ साध्वियाँ मिलीं, आपस में इनका उनसे परिचय हुआ। वे श्वेताम्बर साध्वियाँ बहुत थकान का अनुभव कर रही थीं।

माताजी ने उनसे पूछा–आप दो-दो घड़े लेकर क्यों चढ़ रही हो? इससे तो और अधिक श्रम होता है!

तब उन्होंने कहा–

बात ऐसी है कि हम लोगों को प्यास तो लगती ही है बार-बार पानी पीना पड़ता है, पर्वत पर या रास्ते में पानी मिलता नहीं है। तब उनमें से एक लघुवयस्का साध्वी ने कहा–मुझे तो आपकी चर्या बहुत अच्छी लगती है, वास्तव में राजमार्ग तो यही है, मोक्षमार्ग भी यही है, इस हमारे अपवादमार्ग से न जाने मोक्ष प्राप्त होगा कि नहीं? कौन जान सकता है!

इस पर्वत पर 3500 श्वेताम्बर मंदिर हैं, उन मंदिरों के मध्य में एक दिगम्बर मंदिर है, श्वेताम्बर सम्प्रदाय में शत्रुंजय तीर्थ की विशेष मान्यता है। यही कारण है कि यहाँ पर श्वेताम्बर साधु-साध्वियाँ हजारों की संख्या में रहते हैं।

यह गुजरात यात्रा प्रायः पूर्ण हो चुकी थी, कुछ साधु एक चातुर्मास इसी प्रान्त में करना चाहते थे किन्तु हीरालाल जी संघपति का आग्रह था कि हम संघ को वापस राजस्थान ले जायेंगे और वहीं ब्यावर या अजमेर में चातुर्मास होगा। किन्तु बहुत कुछ प्रयास करने पर भी सन्मतिसागर जी और श्रुतसागर जी महाराज ने अलग जाने का निर्णय कर लिया। तब ज्ञानमती माताजी ने श्रुतसागर जी महाराज को रोकने का बहुत प्रयास किया किन्तु उन्होंने जाने का पक्का विचार बना लिया। तब माताजी ने कहा–महाराज जी! यदि आप संघ से चले जायेंगे तो आपके वापस आने तक मेरे नमक का त्याग है। महाराज जी ने कहा–मैं वापस आने के लिए नहीं जा रहा हूँ। तब माताजी ने कहा–तब तो मेरे नमक का आजीवन त्याग हो जायेगा। दोनों महाराजों ने विहार कर दिया। तब माताजी ने ब्र.राजमल जी से कहा कि आप एक बार प्रयास और कर लो क्योंकि ब्रह्मचारी जी का सन्मतिसागर जी एवं श्रुतसागर जी के साथ वात्सल्य अधिक था।

माताजी के कहने से और स्वयं की भावना से ब्रह्मचारी जी दोनों साधुओं को लेने चल दिये। उनके पास पहुँचकर तथा उनके चरणों में गिरकर बहुत रोये, उनका ऐसा दृश्य देखकर दोनों साधुओं का हृदय दया से आर्द्र हो गया और सोचने लगे–

देखो! संघ का इतना वात्सल्य छोड़कर हम क्यों जा रहे हैं? क्या अन्यत्र ऐसा प्रेम, वात्सल्य मिलेगा? इत्यादि रूप से विचार किया और बोले–अच्छा चलो, हम वापस चलते हैं।

इधर दोनों साधुओं के चले जाने से सभी साधुओं का मन बहुत खिन्न था। परन्तु आहार के समय तक सन्मतिसागर जी और श्रुतसागर जी व ब्र.राजमलजी वहाँ संघ में वापस लौट कर आ गये। यह दृश्य देखकर सभी के हर्ष का पारावार नहीं रहा। कुछ समय बाद मुनि श्री श्रुतसागर जी बोले–माताजी! आपके नमक का त्याग पूरा हो चुका है। अब मैंने नियम लिया है कि अब मैं संघ छोड़कर नहीं जाऊँगा। यह शब्द सुनकर माताजी को बहुत ही खुशी हुई।

गिरनार जी से वापस लौटते समय माताजी के अंतराय बहुत आने लगे, गर्मी का समय आ गया था। वैशाख, ज्येष्ठ की गर्मी पड़ रही थी, उधर 15-16 मील प्रतिदिन चलाई होती थी, इस कारण से रास्ते में माताजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया था, चलना कठिन हो गया था किन्तु फिर भी हिम्मत कर जैसे-तैसे स्थान पर पहुँच जाती थीं। इतनी कमजोर शारीरिक स्थिति होने पर भी माताजी अपने मुख से

किसी से कुछ भी तकलीफ के विषय में नहीं कहती थीं।

वे विचार करतीं कि मैंने स्वरुचि से आत्मकल्याण के लिए ही दीक्षा ली है। यह शरीर तो नश्वर है, पर है, इसकी क्या चिंता करना! जितना हो सके, इससे काम लेना चाहिए, यही अच्छा है। फिर भी कभी कोई माताजी कह देती थीं कि सब से छोटी उम्र होने पर सबसे पीछे आती हैं। उस समय यह सब सुनकर भी ये कुछ भी उत्तर नहीं देतीं और अपने वैराग्य को बढ़ाने का ही प्रयास करती थीं । ब्र.राजमलजी इनकी शारीरिक कमजोरी को जानते थे, इसलिए रास्ते में कभी-कभी कमंडलु लेकर चलते थे।

ब्यावर आगमन —निर्वाणक्षेत्र गिरनार की वंदना कर वापस विहार करते हुए संघ सकुशल ब्यावर आ गया। वहाँ की जैन समाज ने संघ का अच्छा स्वागत किया। आचार्यश्री मुनियों सहित वहाँ सेठ चंपालाल जी की नशिया में ठहरे थे और माताजी वहीं पर मंदिर जी के निकट सरस्वती भवन में ठहर गई थीं। संघ में स्वाध्याय तो समुचित रूप से चल ही रहा था। आचार्यश्री से आज्ञा लेकर माताजी ने राजवार्तिक का दूसरा अध्याय श्रुतपंचमी के दिन प्रारंभ किया, इस स्वाध्याय में ब्र.राजमल जी, क्षुल्लिका जिनमती जी ये दो प्रमुख अध्ययन करने वाले थे और अन्य माताजी भी स्वाध्याय सुनती थीं। कभी-कभी सन्मतिसागर जी, श्रुतसागर जी महाराज भी स्वाध्याय में बैठ जाते थे। कभी-कभी बड़ी माताजी वीरमती जी, ब्र.श्रीलालजी और पं.पन्नालाल जी सोनी भी बैठ जाते थे, ये विद्वान ज्ञानमती माताजी के अध्ययन की शैली देखकर बहुत ही प्रसन्न होते थे। आधा घंटा माताजी ब्र.राजमल और क्षुल्लिका जिनमती जी को गोम्मटसार कर्मकाण्ड पढ़ाती थीं।

ब्यावर के लोग संघ का चातुर्मास कराना चाहते थे तथा अजमेर के सर सेठ भागचंद सोनी आदि ने भी आकर अजमेर चातुर्मास के लिए श्रीफल चढ़ाया और चातुर्मास की प्रार्थना की किन्तु चातुर्मास का निर्णय ब्यावर का ही हो गया।

आर्यिका चन्द्रमती जी, माताजी के ज्ञान से बहुत प्रभावित थीं, वे कभी-कभी कहा करती थीं कि–जब आपके माता-पिता मौजूद हैं तो वे कभी आपके दर्शन करने के लिए क्यों नहीं आते? यह सुनकर माताजी कुछ भी उत्तर नहीं देती थीं किन्तु उनका विशेष आग्रह होने से इनने कहा कि उनको पता ही नहीं होगा कि मैं कहाँ हूँ? चन्द्रमती जी को आश्चर्य हुआ, तब उन्होंने टिकैतनगर का अर्थात् घर का पता पूछ लिया और चुपचाप एक पत्र डाल दिया। पत्र टिकैतनगर पहुँच गया। पत्र पढ़कर माँ और सारे परिवार को विदित हुआ कि हमारी लड़की मैना आर्यिका ज्ञानमती हैं, इस समय आचार्य श्री शिवसागर जी के संघ में हैं। उस समय साधु-संघों का समाचार अखबारों में नहीं छपता था। यही कारण था कि इतने वर्षों तक उनको माताजी का

समाचार ही नहीं मिला था। पत्र में लिखे अनुसार पुत्री के बढ़ते हुए चारित्र और बढ़ते हुए ज्ञान को सुनकर माँ का हृदय पुलकित हो गया। मन में पुरानी बातें मानों ताजी हो गई हों, ऐसा प्रतीत होने लगा। माँ मोहिनी का मोह आँसुओं के द्वारा बाहर निकलने लगा तथा ऐसा लगने लगा कि मैं कब कितनी जल्दी जाकर दर्शन कर लूँ। किन्तु इनके पिताजी ने कहा कि पहले कैलाश को भेज रहा हूँ तत्पश्चात् तुमको लेकर चलेंगे। इधर एक बहिन का नाम मनोवती था, उनकी भी भावना में विरक्ति बढ़ रही थी और कहती रहती थी कि मुझे मैना जीजी के दर्शन कराने ले चलो, मैं तो उन्हीं के पास रहूँगी। इस प्रकार कितनी बार रोया करती थी। माँ कहतीं–बेटी! रोओ मत, मैं अवश्य किसी न किसी दिन तुम्हें उनके दर्शन करा दूँगी। अब पिताजी की आज्ञा के अनुसार कैलाशचन्द अपने छोटे भाई सुभाषचन्द को साथ लेकर ब्यावर के लिए रवाना हो गये।

प्रातः माताजी सरस्वती भवन में स्वाध्याय करा रही थीं। ये दोनों भाई आये और नमस्कार करके बैठ गये, आँखों से आँसू बह रहे थे, सिसकने की आवाज आई, तब किसी ने पूछ लिया–तुम लोग कौन हो? क्यों रो रहे हो?

उस समय माताजी ने मस्तक ऊपर उठाकर देखा और पूछा–आप कहाँ से आये हो?

तब बड़े भाई ने कहा–'टिकैतनगर से'।

पुनः माताजी ने पूछा–किसके पुत्र हो? तुम्हारा क्या नाम है?

उन्होंने कहा–लाला छोटेलाल जी के, मेरा नाम कैलाश चंद्र है। इतना कहकर दोनों भाई और अधिक रोने लगे। उस समय पं.पन्नालाल जी ने आकर उनका हाथ पकड़कर उनको सान्त्वना दी और समझ गये कि ये ज्ञानमती माताजी के भाई हैं। चन्द्रमती माताजी ने भी उनको समझाया।

देखो! तुम्हारी बहिन कितनी श्रेष्ठ हैं, तुम्हें देखकर खुशी होनी चाहिये। तब कुछ शांत हुए और माताजी के चेहरे को एकटक देखते रहे। वे दोनों इस बात से और दुःखी हुए कि जिस मेरी बहिन ने मुझे गोद में खिलाया, लाड़-प्यार किया था और वे हमको पहिचान भी नहीं सकी, ये ज्ञान की ही महिमा है इस प्रकार पंडित जी ने उनको समझाया तथा कहा कि मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ। ये दिन भर तो अध्ययन करती रहती हैं और रात्रि में 11-12 बजे तक सरस्वती भवन में हस्तलिखित शास्त्रों को निकाल-निकालकर देखती रहती हैं। प्रतिदिन मेरे से दो- तीन अलमारियाँ खुलवाती हैं और रात्रि में उनका अवलोकन करती हैं। भोजन- पान से निवृत्त होकर कैलाश ने मनोवती के वैराग्य की बात कही। इतना ही नहीं, माताजी के जितने भी बहिन-भाई हैं, सभी ने त्याग की ओर बढ़ने का प्रयास किया। माताजी

ने कैलाश से कहा–तुम मनोवती को भेज दो, तुम्हारा उस पर बहुत बड़ा उपकार होगा। और भी बहुत कुछ समझाया। माताजी ने मन में विचार किया कि वास्तव में मैंने पूर्वजन्म में कितना पुण्य किया होगा जो मेरा पुरुषार्थ सफल हो गया और मैं गृहकूप से निकल गई।

अब दोनों भाई वापस अपने घर पहुँच गये। माताजी के सब समाचार सुनकर माँ-पिताजी बहुत प्रसन्न हुए कि हमारी सुपुत्री माताजी ने कितनी उन्नति की है, उनका ज्ञान कितना बढ़ चुका है। उनके पास क्षुल्लिका-आर्यिकायें भी हैं। सभी को अध्ययन कराती हैं इत्यादि।

प्रतिक्रमण —माताजी ने जब से क्षुल्लिका दीक्षा ली थी, बराबर दोनों टाइम प्रतिक्रमण करती थीं, माताजी दीक्षा लेकर सदा शास्त्रोक्तरीति से साधु की सभी क्रियाओं को करती थीं, क्योंकि इन सभी क्रियाओं में माताजी की बहुत रुचि थी। उस समय माताजी ने देखा कि संघ में सायंकालीन दैवसिक प्रतिक्रमण नहीं होता था किन्तु माताजी अपने स्थान पर पास में रहने वाली शिष्याओं के साथ कर लेती थीं। एक बार इन्होंने साहस करके वीरमती माताजी से परामर्श किया और उन्हें आगे कर एक साथ बैठकर सायंकाल में दैवसिक प्रतिक्रमण करना शुरू कर दिया। तब कई एक आर्यिकाओं ने हंसी उड़ाई, कहने लगीं–

अरे! दिन भर ''मिच्छा मे दुक्कडं, मिच्छा मे दुक्कडं'' यह क्या ढूंढिया साध्वियों जैसा धन्धा बना लिया परन्तु माताजी ने इस पर कुछ लक्ष्य नहीं दिया और अपना कार्य करती रहीं। किन्तु यह शिकायत के रूप में एक माताजी ने आचार्यश्री से जाकर कह दिया।

माताजी ने देखा कि कहीं यह मामला बढ़ न जाय, तब इन्होंने पं. पन्नालाल जी को कहा कि आप भी इस शास्त्रोक्त क्रिया का समर्थन करना। इसके पूर्व पंडित जी कई बार माताजी से कह चुके थे कि दोनों समय प्रतिक्रमण होना चाहिए परन्तुइस मौके पर वे तटस्थ हो गये, तब माताजी ने स्वयं साहस कर आचार्यश्री के सामने मूलाचार लेकर तथा प्रतिक्रमण संबंधी प्रकरण निकालकर दिखाते हुए कहा कि–

''इसी के आधार से मैं दोनों समय प्रतिक्रमण करती हूँ।''

इसके पूर्व मुनिश्री श्रुतसागर जी महाराज तो माताजी की सभी क्रियाओं से प्रारंभ से ही प्रभावित थे। वे भी चाहते थे कि मुनियों में भी यह परंपरा सामूहिक रूप से चालू हो जाए।

माताजी ने आचार्यश्री से निवेदन किया कि महाराज जी! कृपया आप आदेश दे दें तो सभी मुनि–आर्यिकायें सायंकाल में आपके समक्ष ही प्रतिक्रमण किया करें।

आचार्यश्री ने कहा–अच्छा सोचकर निर्णय देंगे।

पुनः मुनि श्री श्रुतसागर जी से निर्णय कर आचार्यश्री ने आदेश दिया कि– सायंकाल चार से पाँच बजे तक स्वाध्याय चलता है, उस समय पं. पन्नालाल जी सोनी मूलाचार पढ़ते हैं और सभी साधु सुनते हैं, इस स्वाध्याय के बाद यहाँ सामूहिक रूप में दैवसिक प्रमिक्रमण होगा, सभी साधु-साध्वियों को उपस्थित होना है। इस परम्परा के चालू हो जाने से माताजी को बहुत प्रसन्नता हुई।

इसके बाद अष्टमी के दिन सामूहिक रूप से अष्टमी की क्रिया चालू करने के लिए बहुत प्रयास किया किन्तु सफलता नहीं मिली। तब इन्होंने यह क्रिया साध्वी समुदाय के साथ शुरू कर दी। आज सर्वत्र संघों में दोनों समय प्रतिक्रमण चालू है। धीर-धीरे ''चत्तारि मंगल दंडक'' और कायोत्सर्ग के बाद ''थोस्सामि'' पाठ भी शुरू करा दिया था। कुछ समय पश्चात् ये पाक्षिक प्रतिक्रमण में सामायिक दंडक और थोस्सामि का पाठ हर कायोत्सर्ग के साथ प्रारंभ करना चाहती थीं परन्तु सफलता नहीं मिली। इस पाठ को माताजी ने आचार्य धर्मसागर जी महाराज के सानिध्य में चाकसू में सन् 1969 में चालू कराया। इस प्रकार विधिवत् क्रियाओं को करने की माताजी की सदा भावना रहती है।

अजमेर में चातुर्मास—ब्यावर चातुर्मास होने के पश्चात् जयपुर विहार हुआ और अजमेर के श्रावकों का आग्रह शुरू हुआ। सरसेठ भागचंद जी सोनी भी कई बार चातुर्मास के लिए निवेदन करने आये थे। इधर जयपुर के श्रावकों का भी विशेष आग्रह था क्योंकि आई हुई निधि को कौन जाने दे!

फिर भी विचार-विमर्श कर आचार्यश्री ने अजमेर में चातुर्मास करने के लिए स्वीकृति दे दी किन्तु कुछ इस प्रकार का प्रकरण चल रहा था कि मुनिसंघ ही चातुर्मास के लिए अजमेर जायेगा, आर्यिका संघ नहीं। किन्तु प्रधान आर्यिका वीरमतीमाताजी इस बात से सहमत नहीं थीं, इधर आचार्यश्री ने माताजी को बुलाया और कहा–

''ज्ञानमती जी! मैं चाहता हूँ कि आप अपने आर्यिका संघ सहित अजमेर चलें।''

इस प्रकार आचार्यश्री ने कई बार समझाया तथा कहा कि तुम्हें साथ चलना चाहिये

पहले तो माताजी मौन रहीं, किन्तु आर्यिका संघ में अशांति हो जायेगी ऐसा सोचकर इन्होंने आचार्य महाराज के समक्ष यह कह दिया कि–

''जब सब आर्यिकायें चलेंगी, तभी मैं चलूँगी'' इससे आचार्यश्री को बुरा लगा तथा इनको भी खेद हुआ।

अनंतर ब्र.सूरजमल जी और अजमेर की समाज के आग्रह से आर्यिकाओं के विहार का भी निश्चय हो गया तथा सारे संघ का जयपुर से विहार हो गया। आषाढ़ शुक्ला तेरस को संघ सकुशल अजमेर पहुँच गया, वहाँ संघ का भव्य स्वागत हुआ।

सन् 1959 में अजमेर के चातुर्मास में माताजी के पिताजी–माँ, एक बहिन

सौ.शांतिदेवी तथा प्रकाश भाई और दो छोटी बहिनों को लेकर माताजी के दर्शनार्थ आये, इन्होंने करीबन सात वर्ष बाद माताजी के दर्शन किये थे, रास्ते में माताजी को देखते ही माँ माताजी से चिपट गईं और रोने लगीं, पिताजी भी देखकर रोने लगे। जब यह मालूम हुआ कि ज्ञानमती माताजी के माता-पिताजी हैं, तब उनको बड़े आदर-प्रेम से नशिया जी में ठहराया गया पुनः उन्होंने स्नानादि से निवृत्त होकर आचार्यश्री एवं सब संघ के दर्शन किये, कुशलता पूछी।

माताजी का प्रातः पंचाध्यायी का स्वाध्याय चलता था उसमें सभी माताजी, ब्र.राजमल, ब्र.श्रीलाल जी बैठते थे। माताजी संस्कृत श्लोकों को पढ़कर उनका अर्थ करती थीं। मध्याह्न में हमारी स्कूल (श्री भाग्य मातेश्वरी कन्या पाठशाला) की प्रधान अध्यापिका विदुषी विद्यावती बाई सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ का अध्ययन करती थीं, ये माताजी के ज्ञान से बहुत प्रभावित थीं। माताजी के पठन-पाठन के क्रम को और उनके ज्ञान को देखकर माँ मोहिनी फूली नहीं समाती थीं। एक दिन बहिन शांति के पेट में बहुत ही दर्द होने लगा, अतिसार चालू हो गये। माँ घबराकर झट से माताजी के पास आईं, माताजी ने उसी समय एक कटोरी में शुद्ध जल मँगवाकर मन्त्र पढ़कर दिया और वह जल शांति को पिला दिया, जिससे उनको बहुत कुछ आराम मिला। तत्पश्चात् सेठानीजी ने डाक्टरनी को दिखाया, उसने कहा–इनके पेट में बालक बिलकुल ठीक है, चिन्ता की कोई बात नहीं है।

वहाँ से आकर शांति हंसती हुई आई और माताजी से बोली–आपके मंत्रित जल ने मुझे बिल्कुल स्वस्थ कर दिया, अब मुझे कोई तकलीफ नहीं है। माताजी ने कहा–महामन्त्र में अचिन्त्य शक्ति है, इसका हमेशा जाप्य करना चाहिए।

संग्रहणी का प्रकोप—माताजी को संग्रहणी की शिकायत हो गई थी, आहार लेने के बाद जल्दी ही शौच के लिए जाना पड़ता था, वह भी प्रायः कई बार।

औषधि नहीं लेती थीं, स्वास्थ्य ज्यादा बिगड़ने लगा, तब आचार्य शिवसागर जी महाराज, मुनिश्री श्रुतसागर जी महाराज के विशेष समझाने से आहार में औषधि लेना शुरू किया। सन् 1958 में गिरनार की यात्रा से लौटते समय माताजी के आहार में अन्तराय बहुत आती थीं जिससे पेट में पानी नहीं पहुँच पाता, गर्मी का समय था, प्रतिदिन 14-15 मील का पद विहार करना होता, इन्हीं सब कारणों से इनके पेट की आँतें कमजोर हो गई थीं और आहार का पाचन नहीं हो पाता था, कमजोर अवस्था में भी माताजी अपने पठन-पाठन में सतत लीन रहा करतीं। माता मोहिनी को माताजी की ऐसी अस्वस्थ अवस्था देखकर बहुत चिंता होती और स्वास्थ्य को संभालने के लिए कहा करतीं, तब माताजी उनको वैराग्य-वर्धक बातों से समझाया करती थीं।

इस चातुर्मास में मेरी भावनाओं के अनुसार माताजी के पास पढ़ने का मुझे सुअवसर मिला था। मात्र इतना ही नहीं, मैंने माताजी के पास रहकर अपने कल्याण का पक्का विचार बना लिया था। एक हुलासी बाई महिला भी माताजी के पास पढ़ती थीं और वैयावृत्ति किया करती थीं।

माताजी का भाई प्रकाश, जो 15 वर्ष का था, उसने द्रव्यसंग्रह आदि की पढ़ाई माताजी के पास करना प्रारंभ किया था। उच्चारण शुद्ध था, बुद्धि भी तीक्ष्ण थी। माताजी ने सोचा–इसकी बुद्धि तीक्ष्ण है, क्यों न इसे संघ में रोक लिया जाय और अध्ययन करा दिया जाय।

माताजी ने उससे संघ में कुछ दिन रहकर पढ़ने के लिए कहा। वह तो सुन कर खुश हो गया और माताजी के पास रहने का आग्रह करने लगा कि मुझे माताजी के पास छोड़ जाओ, तब माँ ने हँस के टाल दिया किन्तु वह हठ करके बैठ गया, छुप गया परन्तु घर जाने को तैयार नहीं हुआ। इस प्रकार जाने का समय भी टल गया। तब माताजी के बहुत कुछ समझाने पर कुछ समय के लिये उसके माता-पिता उसको संघ में छोड़कर गये।

लाडनूं की ओर विहार —अजमेर चातुर्मास के पश्चात् विहार कर संघ पुष्कर पहुँचा। यहाँ पुष्कर झील होने से सर्दी बहुत थी, यहाँ से विहार कर संघ नागौर की ओर बढ़ा, मार्ग में आनंदसागर ऐलक को ठंड लग जाने से निमोनिया हो गया और मेड़तारोड में सन्निपात हो जाने से समाधि हो गई। संघ विहार करते हुए लाडनूं पहुँच गया, वहाँ पर पंचकल्याणक का मेला था। यहाँ पर सुमतिमती माताजी की समाधि हुई थी। प्रतिष्ठा के मध्य एक चर्चा उठ गई कि मुनियों की मूर्ति नहीं होनी चाहिए। उस समय आचार्यश्री की आज्ञा से जयपुर से पं.इन्द्रलाल शास्त्री आदि आये हुए थे, वे सब आर्षपरम्परा के पक्ष का समर्थन कर रहे थे।

उस समय आचार्य शिवसागर जी महाराज ने ज्ञानमती माताजी से भी कहा कि तुम मुनियों की मूर्ति के प्रमाण निकालकर दो। तब माताजी ने धवला ग्रंथ, मूलाचार और वसुनंदिश्रावकाचार से प्रमाण निकालकर दिये थे। धवलाग्रंथ के प्रमाण से विद्वानों को बहुत संतोष हुआ था।

यहाँ प्रतिष्ठा के अवसर पर चन्द्रसागर स्मारक भवन में विशाल भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा विराजमान की गई थी। उन्हीं के नीचे वेदी पर आचार्यश्री शांतिसागर जी, आचार्य श्री वीरसागरजी और आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागर जी की तदाकार प्रतिमायें विराजमान की गई थीं। प्रतिष्ठा के बाद कुछ दिनों तक संघ यहीं रहा, बाद में सुजानगढ़ के श्रावकों का आग्रह होने से यहाँ से विहार कर संघ सुजानगढ़ पहुँच गया और विशेष भक्ति होने से सुजानगढ़ ही चातुर्मास हो गया।

सुजानगढ़ चातुर्मास —1960 में सुजानगढ़ चातुर्मास अच्छी धर्म प्रभावना के साथ हो रहा था। आर्यिका इन्दुमती जी के पास रहने वाली शांतिबाई की दीक्षा का मुहूर्त निकाला गया। उस अवसर पर क्षुल्लक वृषभसागर जी के भी मुनिदीक्षा के भाव हुए तथा भव्यसागर जी को भी तैयार किया गया, तीनों ही दीक्षा सानंद सम्पन्न हुईं। चातुर्मास के पश्चात् संघ सीकर की ओर बढ़ा। सीकर में संघ के आगमन से अच्छी धर्म प्रभावना हुई, यहाँ से आचार्यसंघ का विहार होकर फतेहपुर पहुँच गया। यहाँ पर फाल्गुन की अष्टान्हिका के अवसर पर सिद्धचक्रमंडल विधान कराने का निर्णय हुआ। वहाँ तेरहपंथ और बीसपंथ में चर्चा बढ़ती गई। मुनि श्री श्रुतसागर जी ने जयधवला ग्रंथ का प्रमाण दिया। पश्चात् माताजी से कहा–ज्ञानमती जी! आप कितने शास्त्रों का प्रमाण दिखा सकती हो?

माताजी ने कहा–पचास से अधिक प्रमाण दिखा सकती हूँ जिनमें सचित्त फल, फूल, दीपक, केशर चढ़ाने का विधान है। इस प्रकार श्रुतसागर जी एवं माताजी के समझाने के बाद दोनों पंथ के लोगों ने एक ही मंडल पर एक साथ विधान किया तथा जैनधर्म की बहुत प्रभावना हुई।

सीकर में संघ का चातुर्मास —यहाँ चातुर्मास में दंग की नशिया में ही सारा संघ ठहरा हुआ था। धर्म की प्रभावना खूब हो रही थी। इसी बीच दीक्षा महोत्सव का प्रोग्राम बन रहा था। दीक्षा लेने का मेरा विचार तो था ही किन्तु जिनको माताजी वर्षों से प्रेरणा दे रही थीं कि तुम मुनिदीक्षा लो परन्तु उनके दीक्षा के भाव नहीं होते थे, उन ब्र.राजमल जी के भी माताजी की अत्यधिक प्रेरणा से दीक्षा के भाव जाग्रत हुए। उस समय माताजी की खुशी का पारावार नहीं था क्योंकि वर्षों के बाद कार्य की सिद्धि होने जा रही थी। दीक्षार्थियों ने दीक्षा के नारियल चढ़ाये, उनमें मैं भी थी। कार्तिक शुक्ला चतुर्थी के दिन का दीक्षा का मुहूर्त निकाला। ब्र.राजमल जी ने मुनिदीक्षा ली, उस समय उन्होंने बहुत ही सारगर्भित उपदेश दिया था। इनका नाम अजितसागर जी रक्खा। क्षुल्लिका जिनमती और क्षुल्लिका संभवमती एवं क्षुल्लिका राजुलमती के आर्यिका दीक्षा के वे ही नाम रक्खे तथा मेरा नाम आदिमती रखा। ब्र.रतनीबाई की क्षुल्लिका दीक्षा का नाम श्रेयांसमती रक्खा, क्षुल्लिका ज्ञानमती जी का नाम बुद्धिमती हुआ। इस प्रकार यहाँ सीकर में सात दीक्षाएँ हुई थीं। मुनि अजितसागर जी मुनिदीक्षा लेने के बाद भी माताजी को अपनी माता मानते थे क्योंकि इनको आगे बढ़ाने का प्रयास माताजी ने किया था। इस बात को संघ के सभी व्यक्ति जानते थे। मुझे अनुभव था कि माताजी ने कितना पुरुषार्थ किया तथा जिनमती जी, मेरे लिए, संभवमती, श्रेयांसमती सभी को घर से निकालने का, उनको योग्य शिक्षा-अध्ययन कराने का श्रेय माताजी को ही है। मैंने हमेशा यह

देखा कि माताजी ने अपना स्वार्थ कभी नहीं देखा न सोचा, आचार्यश्री के कहने पर भी, कि अभी इनको जल्दी दीक्षा मत दिलाओ, तुम्हारा स्वास्थ्य अस्वस्थ रहता है कुछ समय इनको सेवा वैयावृत्ति करने दो, किन्तु माताजी ने अपने स्वास्थ्य आदि की कुछ भी फिक्र नहीं की और जो भी शिष्या आई, उसको ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ चारित्र वृद्धि के लिए प्रेरणा दी और आगे बढ़ाया। इतनी महानता महानात्माओं में ही होती है, साधारण व्यक्तियों में नहीं। जिस दिन हम सभी की दीक्षा हुई थी, उस दिन नवदीक्षितों को देखकर माताजी का हृदय फूला नहीं समाया था।

प्रमेय कमलमार्तण्ड का अध्यापन —यहाँ सीकर में श्रीजिनेन्द्रदेव को हृदय में धारण करके महामंत्र का जाप करके, बिना किसी से पढ़े न्याय का कठिन महान ग्रन्थ प्रमेय कमलमार्तण्ड जिनमती माताजी को ज्ञानमती माताजी ने पढ़ाना शुरू किया। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि बिना पढ़े भी ये अच्छी तरह से अर्थ समझा देती थीं, यह गूढ़ ग्रन्थ भी माताजी के लिए सरल ही था तथा कुछ ही दिनों में माताजी ने जिनमती माताजी को पढ़ा भी दिया और स्वयं भी पढ़ लिया तथा परम संतुष्ट हुईं।

चातुर्मास के पश्चात् संघ का यहाँ से विहार दूजोद हुआ, यह गाँव बहुत ही छोटा है, यहाँ कुएँ बहुत ही गहरे हैं, करीब सवा सौ हाथ रस्सी लगती है। इन सभी समस्याओं को देखकर यह निर्णय हुआ कि कुछ दिन आर्यिकायें दो समुदाय में अलग-अलग विहार कर लेवें पुनः माघ मास तक लाडनूँ पहुँचना है। वहाँ मानस्तम्भ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूसराजजी केशरीचंद जी के परिवार वाले कराना चाहते थे, वे आचार्यश्री के समक्ष प्रार्थना कर चुके थे और आचार्य महाराज ने स्वीकृति दे दी थी।

माताजी ने आचार्यश्री की आज्ञा लेकर मूंडबाड़ा की तरफ विहार कर दिया। मूंडबाड़ा में माताजी अपने आर्यिका संघ के साथ कुछ दिन रहीं पश्चात् कूकनवाली आदि गाँवों में विहार किया। जब आचार्यश्री का संघ लाडनू पहुँच गया, तब लाडनूँ के प्रमुख श्रावक माताजी के पास आये और इन्होंने लाडनूँ की ओर विहार करवा दिया।

जब माताजी अपने संघ सहित लाडनूं के निकट पहुँचीं, करीब 5-6 मील की दूरी थी, तब मेरी कमर में इतना भयंकर दर्द हुआ कि उठकर खड़ा होना, जैसे तैसे खड़ा कर दें तो बैठना बहुत कठिन था। इस स्थिति में पद विहार नहीं कर सकती थी, माताजी वहीं रास्ते में ठहरीं, वहीं आहार किया गया। पश्चात् डोली में मुझे बिठाया और वहीं अकस्मात् माताजी की माँ मोहिनीदेवी आ गई थीं। माताजी के दर्शन कर अति हर्ष को प्राप्त हुईं।

सायंकाल तक माताजी तथा हम सब भी लाडनूँ पहुँच गये। यह मानस्तम्भ के जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा 1962 में फरवरी में थी।

मेरा स्वास्थ्य खराब होने से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा स्थल पर माताजी कदाचित् ही पहुँच पाती थीं क्योंकि वैयावृत्ति करने-कराने में लगी रहती थीं। संघ में यदि कोई भी साधु-साध्वी अस्वस्थ हो और यदि बड़े वैयावृत्ति न करें तो छोटे साधु-साध्वी भी उपेक्षा कर देते हैं तथा बड़े को वैयावृत्ति करते देखकर छोटे भी प्रेम से सेवा-वैयावृत्ति करने लग जाते हैं। अतः माताजी में अन्य सभी गुणों के साथ वैयावृत्ति करने का महान गुण भी है, वैयावृत्ति अंतरंग तप है, व्यवहार में भी वैयावृत्ति-सेवा करने से आपस में वात्सल्य बढ़ता है, श्रबणबेलगोल में भी मेरी हालत बहुत खराब हुई थी, उस समय माताजी ने कलकत्ता से केशवदेव वैद्यजी को बुलाया था तथा औषधियों के विषय में परामर्श करके औषधियों को दिया था। उस समय सारे दिन सेवा का कार्य करना और कराना इसमें ही माताजी का समय व्यतीत होता था। माताजी प्रत्येक कार्य को करने में शारीरिक व मानसिक शक्ति को लगा देते हैं, बिना प्रेम-वात्सल्य के वैयावृत्ति नहीं हो सकती, माताजी के अंदर वात्सल्यभाव कूट-कूट के भरा हुआ है अतः वात्सल्य भाव माताजी का कभी भी समाप्त नहीं हो सकता। मुझे अपने मन में बहुत खेद भी होता था कि मुझे बड़ों से सेवा करवानी पड़ती है परन्तु क्या करूँ, माताजी किसी प्रकार से भी वैयावृत्ति में कमी नहीं होने देती थीं। जिनमती माताजी भी बड़ी थीं उन्होंने भी खूब सेवा का कार्य किया। माताजी के द्वारा जो मेरा उपकार हुआ, उसको कहने के लिए मेरे पास कोई श्रेष्ठ शब्द नहीं जिनके द्वारा माताजी के महान गुणों का वर्णन किया जाए। माताजी का महान व्यक्तित्व जगत प्रसिद्ध है।

इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में माँ मोहिनीदेवी अपने पति को बिना सूचना दिये मनोवती और छोटे पुत्र रवीन्द्र कुमार को लेकर लाडनूँ आ गई थीं। जब वापस टिकैतनगर जाने लगीं, तब मनोवती ने जिद कर ली कि चाहे जो हो जाए, अब मैं घर नहीं जाऊँगी। तब ब्र.श्रीलालजी ने माता मोहिनी को जैसे-तैसे समझाकर उनसे स्वीकृति दिलाकर कु.मनोवती को आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से एक वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया और मनोवती अब संघ में माताजी के पास रहने लगी।

सम्मेदशिखर यात्रा के लिए विहार —लाडनूँ में सानंद चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद संघ का विहार होना निश्चित हुआ।

माताजी ने आचार्यश्री से सम्मेदशिखर यात्रा जाने के लिए आज्ञा मांगी किन्तु आचार्यश्री उठकर खड़े हो गये और बोले – चलो, मैं भी साथ चलता हूँ।

माताजी चुपचाप अपने स्थान पर आ गईं और संघ के साथ विहार कर 'नावा' ग्राम तक आ गईं। यहाँ पर पुनः माताजी ने मुनि श्री श्रुतसागर जी महाराज से कहा कि आप मुझे शिखरजी यात्रा के लिए आज्ञा दिला दें। मुनि श्री ने आचार्यश्री से

निवेदन किया, पश्चात् माताजी ने आचार्यश्री से प्रार्थना की, तब आाचार्यश्री ने स्वीकृति दे दी।

जब यात्रा के लिए जाते समय आचार्यश्री से आशीर्वाद लेने पहुँचे, तब माताजी की आँखों में आँसू आ गये, उस समय आचार्यश्री के नेत्र भी सजल हो गये, दृश्य बड़ा रोमांचकारी हो गया। आचार्यश्री ने मंगल आशीर्वाद दिया, श्रुतसागर जी अजितसागर आदि सभी से आशीर्वाद प्राप्त किया, सभी माताजी से मिले, वंदामि-प्रतिवंदामि करके नावा से विहार किया। माताजी के साथ आर्यिका पद्मावती जी, आर्यिका जिनमती जी, मैं (आदिमती), क्षुल्लिका श्रेयांसमती जी ये चार साध्वियाँ थीं। ब्र. सुगनचन्द प्रमुख थे, उनके साथ उनकी बहिन गल्कूबाई थीं। ब्र. मूलीबाई, कु.मनोवती व ब्र.भंवरीबाई थी।

विहार करके जयपुर पहुँचे, यहाँ से सरदारमल श्रावक भी संघ के साथ जुड़ गये।

अतिशय क्षेत्र महावीर जी के रास्ते में एक मजेदार घटना हुई। मार्ग में चलते हुए गूजरनी महिलायें पूछने लगतीं–"आप दादी हो कि बाबा" इस प्रश्न से हम लोग खूब हँसते। बात ऐसी थी कि हम लोगों को देखकर उनको भ्रम होने लगता क्योंकि शिर पर केश नहीं, शरीर पर कोई अलंकार नहीं, सफेद साड़ी है, तो ये स्त्री हैं कि पुरुष?

एक दिन माताजी और मैं पीछे रह गये, सूर्य डूबने लगा और दो-तीन माताजी और ब्र.सरदारमल जी आगे बढ़ गये और जिस गाँव में ठहरना था, वहाँ पहुँच गये। माताजी ने निकट के एक गाँव में पहुँचकर पूछा–यह गाँव कौन सा है?

गाँव वालों ने गाँव का नाम बतला दिया। आगे के गाँव के विषय में पूछने पर मालूम हुआ कि वह यहाँ से एक मील है, वहाँ तक अब नहीं पहुँच सकते। तब माताजी उस गाँव के एक चबूतरे पर बैठ गईं। गाँव वाले एकत्रित हो गये। उनके पूछने पर माताजी ने कहा–आज रात्रि में यहीं विश्राम करना है। वहाँ पर एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने निवेदन कर अपने घर के एक कमरे में ठहरा दिया। उस घर की महिलायें हमारे पास आ गईं। शंकास्पद दृष्टि से पूछने लगीं–"दादी हो या बाबा"?

एक बार बतला दिया तो भी बार-बार पूछतीं और आपस में कहतीं–देखो! ये कोई ठग हैं, भेष बनाकर घूम रहे हैं।

उस घर की महिला ने अपने पति से कहा–इनको घर से निकाल दो, आपस में पति-पत्नी झगड़ने लगे। पुरुष कहता–ये साध्वी हैं। पत्नी कहती कि ये कोई ठग आदमी हैं।

तब माताजी ने कहा कि हम यहाँ नहीं रहेंगे, सामने वाले खेत में रात्रि विश्राम

करेंगे। तब घर वाला पुरुष घबराया और बोला–ना, ना, बहुत ठंडी है, उनने नहीं जाने दिया। तब हम लोग अपना कमरा बंद करके सामायिक करने लगे। उधर ब्र.सरदारमल जी हल्ला करते हुए आये, माताजी कहाँ हैं? कहाँ हैं?

तब उन महिलाओं ने पूछा–तुम्हारी ये माँ हैं क्या?

तब सरदारमल जी ने उनको समझाया कि ये साध्वी हैं, जगत की माता हैं इत्यादि रूप से दिगम्बर साधु की सारी चर्या समझायी। तब उन लोगों को बहुत हर्ष हुआ। जिस कमरे में हम ठहरे थे, उस घर वाले ने कहा कि आज हमारा घर मंदिर बन गया, सफल हो गया, अब मेरे घर पर किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहेगी।

विहार करते हुए पद्मपुरा से महावीर जी अतिशय क्षेत्र पहुँचे। यहाँ के दर्शन कर विहार किया और मथुरा क्षेत्र पहुँच गये। वहाँ चौरासी प्राचीन स्थान पर दर्शनार्थ गये, यहाँ से जम्बूस्वामी मोक्ष गये हैं।

कु. मनोवती ने अपने भाई प्रकाशचन्द को बुला लिया था क्योंकि यात्रा में जितने व्यक्ति हों, उतना ही अच्छा लगता है। प्रकाशचंद ने मथुरा आकर ब्र.मनोवती के चौके की व्यवस्था संभाली और माताजी के साथ पैदल चलते थे। यहाँ से विहार कर आगरा पहुँचे, वहाँ छीपीटोला वालों के आग्रह से छीपीटोला में ठहरे, वहाँ के कुछ मंदिरों के दर्शन किये। यहाँ बाजार के बीच में माताजी ने मेरे केशलोंच करवाये, जैन-जैनेतर बहुत प्रभावित हुए, माताजी का उपदेश सुनकर आगरा के भिन्न-भिन्न जगह के लोगों ने यहाँ रहने के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु लक्ष्य शिखरजी यात्रा का था इसलिए माताजी अधिक नहीं ठहरीं। आगरा से विहार करके माताजी संघ सहित फिरोजाबाद आ गईं, वहां छिदामीलाल जी के विशाल जिनमंदिर का दर्शन किया। यहाँ किन्हीं लोगों से पता चला कि मुनिश्री अजितसागर जी संघ से अलग होकर जयपुर के एक मंदिर में ठहरे हैं। यह समाचार सुनकर माताजी को बहुत दुःख हुआ और अपने वचन के अनुसार माताजी ने तक्र (छाछ) का त्याग कर दिया। माताजी को पहले से ही संग्रहणी की शिकायत थी इस बीमारी में तक्र ही रोगी के लिए अमृत का काम करती है, तक्र के त्याग से माताजी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और हम लोगों को चिन्ता होने लगी कि अब हम क्या करें, जिससे माताजी 'मट्ठा' लेने लगें। उस समय मैंने अन्न का त्याग कर दिया कि जब माताजी छाछ लेंगीं, तभी मैं अन्न लूँगी। माताजी ने दूर रहते हुए अपने प्रयासों से अजितसागर जी को संघ में वापस मिलवाया और फिर वे संघ छोड़कर कभी नहीं गये क्योंकि वे ज्ञानमती माताजी को माँ मानते थे, उनके वचनों को टाल नहीं सकते थे। उनके संघ में मिलने के बाद ही माताजी ने मट्ठा लिया और माताजी के मट्ठा लेने पर मैंने अन्न लिया था। इस प्रकार माताजी ने हमेशा संघ को जोड़ने का काम किया, तोड़ने का नहीं।

यहाँ से विहार कर संघ सहित माताजी लखनऊ आ गईं। माताजी के मस्तिष्क में गुरुवर वीरसागर जी महाराज के शब्द घूमते रहते थे कि–'सुई का काम करो, कैंची का नहीं'' अथवा ''मा भूद मे सत्तु एगागी'' मेरा शत्रु भी मुनि अकेला विहार न करे।

आर्यिका दीक्षा में संघ सहित माताजी को देखकर और उनका उपदेश सुनकर लखनऊ के लोग बहुत ही प्रसन्न हुये। यहाँ से विहार कर नौराही होते हुए अयोध्या पहुँच गये। यहाँ मंदिरों के दर्शन कर टोंकों के दर्शन किये।

टिकैतनगर आगमन —टिकैतनगर के लोग पहले ही टिकैतनगर चलने के लिए प्रार्थना करने आये थे। पुनः टिकैतनगर के श्रावक आये और अपने गाँव में चलने का आग्रह किया। माताजी ने स्वीकृति दे दी और टिकैतनगर पदार्पण किया। यहाँ 5-6 दिन रहे, बहुत धर्म प्रभावना हुई।

माताजी के पिता छोटेलाल जी ने कु.मनोवती और प्रकाश को रोकने का प्रयास किया।

माताजी ने कहा–बीच में अधूरी यात्रा में इन्हें क्या पुण्य मिलेगा। पूरी यात्रा तो करा देने दो। एक दिन इनके पिताजी ने मनोवती, प्रकाश दोनों को बिठाकर रास्ते के अनुभव पूछे, तब इन दोनों ने रास्ते में कितनी कठिनाई आती हैं और किस-किस प्रकार के प्रसंग आते हैं? सभी घटनायें सुनाईं।

बनारस पहुँचने के 2-3 दिन पहले हम लोग एक गाँव से बाहर स्कूल में ठहरे हुए थे। प्रातः बाहर एक चबूतरे पर आकर माताजी पुस्तक हाथ में लेकर समयसार कलश का पाठ कर रही थीं कि सामने से एक विद्वान महोदय आये। धोती-दुपट्टा पहने तिलक लगाये हुए थे, कंधे पर यज्ञोपवीत थी, पैरों में खड़ाऊँ थे। वे माताजी के सामने आकर खड़े हो गये। एक क्षण देखते रहे पुनः नमस्कार कर पूछा–

आप जो ये पाठ पढ़ रही हैं, उसका कुछ अर्थ भी समझ में आ रहा है? तब माताजी ने संस्कृत में ही उत्तर दिया–

''किंचित्–किंचित् अवबुध्यते''

तब वे ब्राह्मण विद्वान आश्चर्य चकित हो गये पुनः संस्कृत में बोलने लगे कि मैं समझता था कि जैन साधु-साध्वी संस्कृत में निरक्षर भट्ट होते हैं किन्तु आज उससे विपरीत देखा जा रहा है।

पुनः पूछा–आपने संस्कृत व्याकरण पढ़ा है क्या?

माताजी ने संस्कृत में ही उत्तर दिया कि–हाँ! जैनेन्द्रव्याकरण, कातंत्ररूप माला आदि व्याकरण पढ़े हैं और पढ़ाये हैं। उस समय वे ब्राह्मण विद्वान 10 मिनट वहीं बैठ गये और बोले–आप जो पढ़ रही हैं, उसे समझाइये।

तब माताजी ने समयसार कलश के कई एक काव्य पढ़कर उनका संस्कृत भी संस्कृत में ही समझाया। एक प्रकार से संस्कृत में प्रवचन हो गया। पश्चात् वे विद्वान प्रशंसा करते हुए बोले–'आज मैं 'ब्राह्मण वर्ण में ही संस्कृत भाषा है' इस गर्व को छोड़कर आपके चरणों में नतमस्तक हूँ। आपने जो अध्यात्म का उपदेश सुनाया, उसको मैं कभी नहीं भूलूंगा।

इसके पश्चात् उनने ब्र.सुगन चन्द और प्रकाश चन्द से माताजी का संक्षिप्त परिचय पूछा और कहा कि आप हमारे गुरुकुल में सभी विद्यार्थियों को कुछ धर्मोपदेश देकर ही विहार करें अतः माताजी ने वहाँ उपदेश दिया पश्चात् विहार किया। उस समय वे विद्वान कुछ दूर तक पहुँचाने आये थे तथा उन विद्वान ने माताजी को बार-बार यही कहा कि–आज से मेरा जैनधर्म और जैन साधुओं से द्वेष जाता रहा, अब मैं जैनग्रन्थ अवश्य पढ़ूँगा।

''माताजी के मन में प्रारंभ से ये भावना थी और वे कहा भी करती थीं कि लगभग 100 बालक और 100 बालिकाओं को घर से निकालकर ब्रह्मचर्यव्रत देकर संस्कृत व्याकरण का और जैन सिद्धांतों का, न्यायग्रन्थों का गहरा अध्ययन कराया जावे, जब बनारस के संस्कृत विद्यालय को देखा तो वह भावना पुनः जाग्रत हुई थी।

सन् 1968 में प्रतापगढ़ चातुर्मास में माताजी ने विशुद्धमती जी के साथ चर्चा करते समय अपनी भावना को कहा था, तब उन्होंने कहा कि माताजी! यदि आप बुन्देलखंड में विहार करें तो मैं निश्चित कहती हूँ कि आप को सौ बालिकायें मिल जायेंगी किन्तु माताजी का उस ओर विहार नहीं हुआ।

माताजी ने इधर उत्तर प्रान्त में रहकर ही लगभग 50 ब्रह्मचारी और लगभग 100 ब्रह्मचारिणियों को घर से निकालकर मोक्षमार्ग में लगाया है तथा वे अच्छा अध्ययन कर रहे हैं।

बनारस क्षेत्र के दर्शन —यहाँ के श्रावकों ने अच्छा स्वागत किया तथा मैदागिन धर्मशाला में ठहराया था। यहाँ पर सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभू और श्रेयांसनाथ इन चार तीर्थंकरों का जन्म हुआ था। यहाँ भदैनीघाट के मंदिरों के दर्शन करने गये। यहाँ स्याद्वाद महाविद्यालय नाम की संस्था है जो गंगातट पर है तथा मंदिर भी है जो बहुत ही सुन्दर है, यहाँ दर्शन किये। पुनः स्याद्वाद विद्यालय के प्रधान पंडित कैलाशचन्द जी सिद्धांत शास्त्री सामने आये और विद्यालय के अंदर ले जाकर सब कुछ दिखाने लगे और माताजी से संस्कृत में वार्तालाप करते हुए बहुत ही खुश थे। इसी बीच बोले–माताजी! मैं दिगम्बर जैन मुनि–आर्यिकाओं में रुचि नहीं रखता हूँ किन्तु आज आप से वार्तालाप करके आपकी चर्या और आपका ज्ञान देखकर मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ, मैं बहुत खुश हो रहा हूँ कि आप जैसी आर्यिकायें हैं। आपके

यात्रा की व्यवस्था में भी जैसा कि मैंने सुना है कि न आप रुपये आदि की व्यवस्था करवाती हैं और न संघस्थ श्रावकों को याचना करने देती हैं ये सब व्यवस्था हमको बहुत अच्छी लगी इत्यादि.....

यहाँ बनारस में एक स्थान पर शिवपिंडी भी देखी थी, जो शतखंड थी और सांकलों से बंधी हुई थी।

यहाँ से विहार कर आरा आये, यहाँ बालाविश्राम-आरा की संस्थापिका ब्र. चन्दाबाई ने बड़े ही वात्सल्य से संघ का स्वागत किया और आश्रम में ठहराया। इसी आश्रम में कुछ वर्ष पहले मैंने पढ़ाई की थी अतः सब परिचित थे तथा हमारे पश्चात् आचार्य विमलसागर जी महाराज का संघ भी आश्रम में ही ठहरा, उस संघ में विजयमती माताजी थीं, उन्होंने तो आश्रम में रहकर ही सारा अध्ययन किया था पश्चात् अध्यापन का कार्य भी किया था। हम सभी से चंदाबाई एवं अन्य सभी प्रसन्न थे।

यहीं पर अकस्मात् टिकैतनगर से तार आया कि पिताजी की तबियत खराब है, प्रकाश को जल्दी भेजो।

प्रकाश ने माताजी को तार का समाचार सुनाया तथा आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज के पास पहुँचे–महाराज जी! पिताजी की तबियत बहुत खराब है, मुझे बुलाया है।

महाराज जी ने तत्काल कहा–तुम चिंता मत करो, तुम्हारे पिताजी स्वस्थ हैं, अभी दुकान पर बैठे हैं और कपड़े फाड़ रहे हैं, ग्राहक उन्हें घेरे खड़े हैं। यह सुनकर प्रकाश कुछ शांत हुए और लोगों के द्वारा महाराज के मुख से निकले अनेक शब्दों की सत्यता को सुनकर विश्वास हो गया। आरा शहर के बाद पटना की ओर विहार हुआ। यहाँ गुलजार बाग आकर सेठ सुदर्शन की निर्वाण भूमि के दर्शन किये।

पटना से विहार कर राजगृही आ गये, यहाँ पाँचों पहाड़ों की वंदना की। पश्चात् यहाँ से भगवान महावीर की निर्वाण भूमि पावापुरी आये, यहाँ पर रहकर भगवान महावीर की वंदना कर आगे बढ़ गये।

गुणावां क्षेत्र के दर्शन किये और कुंडलपुर भगवान महावीर की जन्मभूमि आ गये, यहाँ के दर्शन करके चम्पापुरी नगरी में आये, यहाँ पर भगवान वासुपूज्य के पाँचों कल्याणक हुये थे। इस क्षेत्र की वंदना की और गिरिडीह होते हुए, जिस क्षेत्र की वंदना को 6 माह से मन मयूर नाच रहा था कि कब सम्मेदशिखर तीर्थराज के दर्शन हों, वह 1200 मील चलकर ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को पहुँचकर आहार के पश्चात् सभी संघस्थजन एक साथ ही पर्वत पर चढ़े। भगवान पार्श्वनाथ की टोंक पर कु.मनोवती को माताजी ने सप्तम प्रतिमा के व्रत दिये। माताजी एक गेंहूँ धान्य ही

कई वर्षों से ले रही थीं यहाँ पर माताजी ने चावल लेना प्रारंभ किया। जिनमती माताजी ने पहली बार ही सम्मेदशिखर जी की यात्रा की थी, उनको आज वंदना करके अपने भव्यत्व का निर्णय हो गया कि मैं वास्तव में भव्य हूँ जिससे उनको बहुत हर्ष हुआ। यहाँ पर एक माह तक रहे पश्चात् चातुर्मास की चर्चा चली कि कहाँ पर चातुर्मास करना चाहिए। यद्यपि माताजी की भावना शिखरजी ही चातुर्मास करने की थी किन्तु मच्छर आदि का भय बताकर सब लोग कुछ भी निर्णय नहीं होनेदेते थे।

पश्चात् एक दिन संघ से मुनिश्री श्रुतसागर जी के द्वारा लिखाया हुआ एक पत्र रामचंद्र कोठारी का मिला कि–

महाराज जी का कहना है कि जैसे आपने सम्मेदशिखर जी के लिए बारह सौ मील की यात्रा की, वैसे ही धर्म प्रभावना के लिए दो सौ मील और चलकर कलकत्ता चली जाओ, वहाँ पाँच मास विश्राम कर लेना, ऐसा मेरा कहना है। माताजी ने आपस में विचार-विमर्श कर निर्णय लिया कि संघ को कलकत्ता चलना है, उधर कलकत्ता वाले बड़े-बड़े सेठ लोग आ गये, मात्र चातुर्मास स्थापना के दश दिन रह गये थे और दो सौ मील कलकत्ता चलना था। रास्ते में अधिक चलने से स्वास्थ्य भी बिगड़ा, पैरों की हालत बहुत खराब हुई किन्तु आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी–चातुर्मास स्थापना के दिन पहुँच गये। पहले से ही दूर तक स्वागत के लिए स्त्री-पुरुषों की भीड़ पहुँच रही थी। शहर के निकट आते ही बैंडबाजे के साथ बेलगछिया पहुँचने तक लगभग ग्यारह बज गये, वहाँ पर विशाल सभा का आयोजन हुआ, माताजी ने सभी को मंगल आशीर्वाद प्रदान किया। उस समय लोगों की खुशी, उत्साह और भक्ति देखते ही बनती थी।

माताजी ने टेलीफोन द्वारा आचार्य शिवसागर जी महाराज जी से आशीर्वाद और चातुर्मास स्थापना की स्वीकृति मँगवाई।

सामायिक पश्चात् रात्रि में वर्षायोग की स्थापना की थी। इसकी चर्चा चली कि रात्रि में चातुर्मास स्थापना करना उचित है क्या?

इधर बेलगछिया में रहने वाले ब्रह्मचारी प्यारेलाल जी भगतजी ने उन सबको समाधान देकर शांत करा दिया। मुनिभक्त लोगों को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि भगतजी स्वयं तेरहपंथी हैं, सुधारक हैं फिर भी ऐसा समाधान देकर सभी को शांत कर रहे हैं। ब्र.भगतजी और ब्रह्मचारिणी चमेलीबाई ये दोनों ही आगम के श्रद्धालु थे और माताजी के प्रति भी बहुत श्रद्धा-भक्ति रखते थे।

प्रवचन में पं.बाबूलाल जी ने माताजी से निवेदन किया कि आप अपने उपदेश में तत्त्वों का ही विषय लेवें, क्रियाकांडादि का विषय न लेवें क्योंकि यहाँ अनेक विचारधारा के लोग हैं।

माताजी ने अपने प्रवचन में कहा कि मैं शास्त्र के आधार से क्रिया और तत्त्व दोनों का ही प्रतिपादन करूँगी। मात्र तत्त्वों का प्रतिपादन करूँ, यह एकांत मेरे द्वारा सम्भव नहीं है। हाँ, जिन्हें जिस विषय में शंका हो, वे मेरे पास आकर उस-उस विषयक आगम प्रमाण देख सकते हैं। मैं अपने गुरुओं और आगमग्रन्थों के सिवाय किसी के बन्धन में नहीं बंध सकती हूँ.....

माताजी के इस वक्तव्य का सभा के सभी लोगों ने करतल ध्वनि से अच्छा स्वागत किया।

कलकत्ता जैसे बड़े शहर में जहाँ पर सभी पंथ के श्रावकगण थे, अनेक प्रकार की शंकाएँ आती थीं किन्तु माताजी बेधड़क सभी शंकाओं का समाधान कर देती थीं।

कलकत्ता में पाँच महिने के चातुर्मास में पाँच किलो दूध से प्रतिदिन बड़ी शांतिधारा होती थी। संघ के चैत्यालय में माताजी के कहने से ब्र.चमेलीबाई ने कई बार दूध का अभिषेक किया था। इन्होंने बराबर पाँच माह तक स्वाध्याय में भाग लिया, खूब आहार दिया और बहुत ही अच्छा वात्सल्य रखा। ब्र. प्यारेलाल जी का भी बहुत अच्छा वात्सल्य था, वे सदा माताजी के अनुशासन की, संघ की, साध्वियों और ब्रह्मचारिणियों की प्रशंसा भी किया करते थे, वे कहते थे कि आपके संघ में कोई भी कुछ याचना नहीं करता है, प्रातः से रात्रि सोने तक सभी अपने स्वाध्याय-अध्ययन में ही लगी रहती हैं, कोई प्रपंच, कलह या अशांति नहीं है इत्यादि.....

शहर के मंदिर में उपदेश और आहारचर्या —आश्विन के महीने में श्रावकों के आग्रह से माताजी संघ सहित करीब एक माह से अधिक शहर में बड़े मंदिर जी में ठहरे थे। यहाँ प्रतिदिन 20-25 चौके लगते थे, केवल पाँच माताजी थीं अतः व्रतपरिसंख्यान लेकर आहार को निकलती थीं। अनेक लोग साथ में रहते थे, चारों ओर से पड़गाहन की ध्वनि गूंजने लगती थी, हजारों जैनेतर लोगों की भीड़ लग जाती। आहार के पश्चात् माताजी को बैंड-बाजे के साथ मंदिर जी में पहुँचाने आते थे, यहाँ बहुत ही धर्म प्रभावना हुई।

कु.सुशीला पर संस्कार —जब माताजी कलकत्ता पहुँचीं तो शहर से मुनिश्री श्रुतसागर जी की गृहस्थाश्रम की धर्मपत्नी बसंतीबाई, उनके पुत्र-पुत्रवधू, पुत्री आदि सभी आते थे। पुत्री सुशीला के बारे में एक बार खानियाँ में श्रुतसागर जी महाराज ने बसंतीबाई से कहा था कि–

"आप अपनी पुत्री सुशीला को ज्ञानमती माताजी को गोद दे दो। वह बात जब ये लोग आते, तो माताजी उन्हें याद दिलाती रहती थीं, यह लड़की एक-दो बार ही आई थी। जब शहर में एक माह जाकर रहे, तब बसंतीबाई और सुशीला दोनों ही

माताजी के पास रात्रि में सोती थीं। उस समय से माताजी के वचनों का असर होने लगा और अब तो इतना प्रभाव पड़ा कि शूद्रजल का त्याग आजीवन कर दिया और जब वापस बेलगछिया आये, तब साथ ही आ गई, फिर घर जाना उसे बहुत ही खराब लगता था, माताजी को छोड़ना नहीं चाहती थी। माताजी ने सुशीला में एकदम परिवर्तन ला दिया था। माँ भी इसके पक्ष में थी किन्तु भाई बहुत विरोधी बन गये। फिर भी विहार के समय हमारे साथ ही रवाना हुई किन्तु जहाँ रात्रि विश्राम करना था, वहाँ भाई हीरालाल ने बहुत तूफान किया और वापस कलकत्ता ले गया। पुनः चैनसुरा नामक गाँव में अपनी बड़ी बहिन के साथ आई और माताजी ने इसे ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया और दोनों बहनें घर चली गईं। पश्चात् चार साल के बाद पुनः माताजी के पास आ गई थी और पच्चीस सौवें निर्वाणोत्सव पर दिल्ली में ही माताजी ने सुशीला को आचार्य धर्मसागर जी महाराज से दीक्षा दिलाई, उस समय करीब 8 दीक्षायें हुई थी। इनका नाम आर्यिका श्रुतमती रखा गया।

कलकत्ता चातुर्मास के पश्चात् पुनः शिखरजी के लिये विहार किया, सन् 1964 फरवरी में सम्मेदशिखर जी में नंदीश्वर द्वीप की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी अतः लोगों के आग्रह से माताजी संघ सहित वहीं रुक गईं। यहाँ पर कलकत्ता के सुगनचंद लुहाड़िया ने एक अठारह वर्ष के ब्र.सुरेश चन्द को लाकर माताजी को सौंप दिया। इस सुरेश को माताजी ने अपने पास बैठाकर उसका सब इतिहास सुना तो बहुत ही दुःख हुआ। यह उदयपुर के एक सेठ का इकलौता बेटा था। 12 वर्ष की उमर में ही घर छोड़कर निकल आया है, कुछ दिन अन्यमती के साधुओं के पास भी रहा है, श्वेताम्बर साधुओं की भी संगति की है। योग्यगुरु न मिलने से भटक रहा है।माताजी ने इसे वात्सल्य दिया और अपने पास रख लिया और छहढाला आदि पढ़ाना शुरू कर दिया। इसे अगले चातुर्मास में हैदराबाद से आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के पास माताजी ने भेज दिया और समाचार भी भेजा कि यह योग्य पात्र है, इसे क्षुल्लक दीक्षा दे दीजिये।

आचार्यश्री को माताजी के प्रति पूर्ण भरोसा था कि इनके पास में रहने वाले में किसी प्रकार की कमी नहीं हो सकती अतः आचार्यश्री ने इनको क्षुल्लक दीक्षा दी पश्चात् मुनिदीक्षा दी, इनका नाम मुनि संभवसागर जी रखा।

शिखर जी से विहार करके पुरलिया आ गये, यहाँ पर महावीर जयंती का अच्छा प्रोग्राम बनाया, माताजी का उपदेश हुआ जिससे जैन और जैनेतर में अच्छी धर्म प्रभावना हुई।

यहाँ पुरलिया में आने पर ब्र.महावीर सायं 4 बजे दूध के लिए एक श्रावक के घर गये। उसने कहा– हमारी गाय सायंकाल में दूध नहीं देती। ब्र. जी ने कहा–चलो,

आज देखें। वहाँ जाकर गाय के पास दूध दुहने बैठे। गाय ने दूध दे दिया, श्रावकों को बहुत खुशी हुई, इस प्रकार जब तक संघ वहाँ रहा, तब तक गाय ने प्रतिदिन सायंकाल में दूध दिया क्योंकि माताजी के संग्रहणी की बीमारी थी इसलिए ब्र.मनोवती मट्ठा बनाकर आहार में माताजी को दिया करती थीं। जिस दिन वहाँ से माताजी ने संघ सहित विहार किया, उस दिन से गाय ने शाम को दूध नहीं दिया। यह देखकर श्रावकों को बहुत आश्चर्य हुआ कि माताजी में बहुत चमत्कार है। माताजी का स्वास्थ्य खराब है, इसलिए गाय ने दूध दे दिया और अब नहीं देती है इत्यादि.....

सराक बस्ती में विहार—सम्मेदशिखर जी में साहू शांतिप्रसाद जी ने कई बार कहा था कि सराक जाति के स्थानों पर साधुओं को विहार करके उनका उद्धार करना चाहिये।

माताजी हम सभी आर्यिकाओं को बलरामपुर में छोड़कर कु.मनोवती, पद्मावती माताजी और ब्र.महावीरप्रसाद को साथ लेकर सराक बस्ती में निकल गईं। खेत और जंगल का रास्ता था, 10-12 गाँवों में भ्रमण करके वहाँ की जानकारी ली, वहाँ दो पार्टी थीं–एक सादा पार्टी और दूसरी काला पार्टी। वहाँ के लोगों ने माताजी को बतलाया कि यहाँ करीब 50 वर्ष पहले ब्र.शीतल प्रसाद आये थे, उन्होंने पुनर्विवाह की प्रथा चला दी, इस कारण हमारी सराक बस्ती में दो पार्टी हो गयीं। हम दोनों पार्टी एक साथ भोजन नहीं करते हैं किन्तु अभी-अभी कुछ श्रीमंत लोगों ने हम लोगों को एक साथ बैठकर भोजन करा दिया इत्यादि.....

यहाँ के लोगों ने माताजी का बहुत सत्कार किया क्योंकि पहले इस सराक बस्ती में कोई भी साधु नहीं आये थे।

यहाँ से आकर माताजी ने संघ सहित कटक की ओर विहार कर दिया।

उड़ीसा के रास्ते में करीब 200 मील तक जैनों के घर नहीं थे। माताजी आहार के पश्चात् प्रतिदिन विहार कर देती थीं किन्तु उस दिन एक महात्मा के मठ में ठहरे हुए थे, उसने 1-2 दिन ठहरने के लिए निवेदन भी किया किन्तु माताजी कहाँ रुकने वाली थीं। सहसा माताजी बोलीं–आज चतुर्दशी है, पुस्तकें लाओ, पाक्षिक प्रतिक्रमण करके ही विहार करेंगे। हम लोग पुस्तकें ले आये, प्रतिक्रमण शुरू हुआ था कि थोड़ी देर बाद भयंकर तूफान आया और देर तक चला, रुकने के बाद ब्र.महावीर प्रसाद ने आकर कहा–माताजी! यदि आज विहार हो जाता तो क्या होता?

अरे देखो! सारी सड़कों पर बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी हो गये है। कहीं से भी मोटर-गाड़ी निकलने का रास्ता नहीं है। शाम को जब माताजी ने स्वयं निकल कर देखा तो दंग रह गईं। सारी सड़क पर पेड़ पड़े हुए हैं, यह सब देखकर हम सभी आर्यिकाओं के मुख से यही निकला कि माताजी के शब्दों में महान शक्ति है! आज

इनके मुख से अकस्मात् निकल गया कि अभी विहार नहीं करना है। उस दिन रात्रि में भी वहीं विश्रांति की।

क्रम-क्रम से चलते हुए कटक पहुँचे, यहाँ पर लाडनूँ के श्रेष्ठीजन रहते थे, उनके सारे परिवार ने बहुत भक्ति की। वहाँ के मंदिर के दर्शन किये और तीर्थक्षेत्र खंडगिरि-उदयगिरि पहुँचकर वहाँ की वंदना की। यहां पर अनेक गुफायें हैं और दीवालों पर उत्कीर्ण हुयी चौबीस सौ वर्ष पुरानी जिनप्रतिमाओं को और शासन देव-देवियों को देखा, अनेक शिलालेखों को देखा। यहाँ का राजा खारवेल था जो कि जैन था। यहाँ पर दर्शन कर और गुफाओं को देखकर मन बहुत ही प्रसन्न हुआ।

माताजी ने सोचा कि कुछ और चलकर हैदराबाद चातुर्मास कर लेंगे। वहाँ से श्रवणबेलगोल करीब साढ़े चार सौ मील रह जायेगा।

ऐसा सोचकर वहाँ से विहार किया, आगे की व्यवस्था पूषराज जी फतेचंद जी भक्तिमान श्रावकों ने बनाई।

इधर मार्ग में अनकापल्ली, विशाखापत्तनम् आदि शहर आये। इस प्रांत में माँस-मछली खाने वाले लोग बहुत थे। ताड़ के बड़े-बड़े वृक्ष थे, उनमें मटकियाँ लटकी रहती थीं, लोग ताड़ी पीते थे, वहाँ के आदिवासी बहुत डरावने लगते थे।

रास्ते में महिलायें और पुरुष सामने आकर मुट्ठी बाँधकर पूछते–

"या उरु रंडे! या उरु रंडे!

यह सुनकर कभी डर लगता, कभी हम सब खूब हँसते थे।

कुछ पता नहीं पड़ता कि ये कुछ पूछ रहे हैं कि गालियाँ दे रहे हैं। कुछ दिनों बाद माताजी ने शिक्षित लोगों को पूछा कि "या उरु रंडे" का क्या अर्थ है? तब उन्होंने बतलाया कि ये लोग पूछते हैं 'हे महानुभाव! आपका कौन सा गाँव है? यह 'रंडे शब्द आदरसूचक है। इस प्रकार देश-देश की अनेक भाषाओं को सुनकर अच्छा लगता था।

इस आँध्र प्रान्त में माँसाहारी लोग बहुत थे। कहीं-कहीं श्वेताम्बर जैन आ जाते थे, बहुत भक्ति करते। माताजी का लक्ष्य हैदराबाद पहुँचने का था। रास्ते में अनेक लोगों को उपदेश देकर माताजी ने माँस खाने का त्याग कराया था।

कलकत्ता वालों के द्वारा हैदराबाद संघ के पहुँचने का समाचार पहुँच गया था। वहाँ के लोगों में हर्ष की लहर दौड़ गई, लोगों में खूब उत्साह था क्योंकि साधुओं के प्रवेश का इनके लिए पहला मौका था। इनको कभी चातुर्मास कराने का अवसर ही नहीं मिला था।

शहर के प्रवेश में मीलों दूर से ही बैंड-बाजे के साथ जुलूस था किन्तु कुछ दिन पहले ही माताजी के शरीर की स्थिति गिरती जा रही थी, शरीर में कमजोरी बहुत बढ़ गई, चलाई अधिक होती थी, माताजी के संग्रहणी का रोग था, ज्यादा चलने से

और रास्ते में मट्ठे की व्यवस्था नहीं होने से रोग ने उग्ररूप धारण किया, खून के दस्त (अतिसार) बहुत बढ़ गये। जिस दिन हैदराबाद में प्रवेश था, उस दिन माताजी की स्थिति बहुत खराब थी, रास्ते में कितनी बार शौच को जाना चालू था। पता नहीं किस प्रकार हिम्मत करके माताजी चल रही थीं, भयंकर गर्मी थी। जैसे-तैसे हैदराबाद के केशरबाग के मंदिर तक माताजी पहुँची थीं।

गर्मी की भीषणता और पुरानी संग्रहणी के कारण एवं करीब इस महीने साढ़े तीन सौ मील की चलाई के कारण माताजी का शरीर जवाब दे चुका था। भोजन में कुछ रस आदि लेते ही तत्काल वमन हो जाता। शरीर की हालत बहुत खराब हो गई। डाक्टर-वैद्यों ने भी जबाव दे दिया।

ऐसी स्थिति में जिनमती माताजी ने कलकत्ता फोन कराया। वे लोग कलकत्ता से वैद्यराज केशवदेव को लेकर आये। ऐसी हालत में ही माताजी ने वर्षायोग की स्थापना की थी। माताजी के शरीर की स्थिति देखकर लोग अनेक प्रकार से चिंता करते थे कि माताजी छोटी उम्र की हैं, कलकत्ता में माताजी ने जैन धर्म का डंका बजाया है, अब क्या होगा? इत्यादि।

कलकत्ता वाले वैद्य जी ने अपना इलाज प्रारंभ किया। औषधि के साथ प्रत्येक आहार की वस्तु को रूपांतर करके दिया जाता था, सादा कोई भी वस्तु नहीं, सभी चीजें औषधि डालकर बनाई जाती थीं। पाँच दिन तक वैद्य जी अपना उपचार करते रहे परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। वमन और अतिसार की वही स्थिति रही।

वैद्यजी ने कहा–

माताजी! इस संग्रहणी रोग से ग्रसित शरीर को आपने इतना अधिक चला दिया है कि अब इसकी आँतें बेकार हो चुकी हैं। पेट का पानी सूख गया है, अब इनको कैसे बचाया जाय? वैद्य जी भी चिंतित होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, वे बोले– माताजी! आप ही बतायें क्या किया जाए?

तब माताजी ने धीरे से कहा–

मट्ठा बन्द करके दूध का प्रयोग करके देखें। दूसरे दिन मट्ठा बन्द कर दिया और जरा सा दूध दिया। उसमें भी इलाइची आदि वस्तुयें डालकर दिया। दैवयोग से उस दिन वमन रुक गया। वैद्य जी प्रसन्न हुए पश्चात् धीरे-धीरे औषधि ने अपना काम करना चालू किया। उस समय माताजी को सादा जल नहीं देकर नारियल का जल अनेक प्रक्रिया से परिवर्तित करके दिया जाता था। प्रत्येक वस्तु को परिवर्तित करके कुछ औषधि आदि डालकर ही दिया जाता था। धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ होना शुरू हुआ, तब सभी के मन में शांति आई तथा वैद्य जी भी माताजी से आशीर्वाद लेकर कलकत्ता के लिए रवाना हो गये।

इधर हैदराबाद से किसी ने टिकैतनगर माताजी की बीमारी का समाचार भेज दिया। टिकैतनगर से भाई कैलाशचन्द आये, उस समय तक स्थिति ठीक नहीं थी। दो-चार दिन बाद कु.मनोवती ने अपने भाई से दीक्षा लेने के लिए आग्रह किया। इन्होंने माताजी को कहा क्योंकि मनोवती ने कहा कि जब तक मेरी दीक्षा का निश्चित नहीं होगा, तब तक मैं नीरस भोजन करूँगी।

माताजी ने आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से दीक्षा की आज्ञा लेने के लिए कैलाशचन्द को पपोराजी भेजा। ये सन् 1964 का चातुर्मास था। कैलाशचन्द पपोरा जी पहुँचे, आचार्यश्री को नमस्कार किया और सब स्थिति आचार्यश्री को सुनाई।

आचार्यश्री ने कहा–

"मेरी आज्ञा है, आर्यिका ज्ञानमती माताजी उसे क्षुल्लिका दीक्षा दे दें"।

आज्ञा लेकर कैलाशचन्द वापस हैदराबाद आ गये। उस समय मनोवती की खुशी का क्या ठिकाना था!

माताजी ने श्रावण शुक्ला सप्तमी को दीक्षा देने की घोषणा कर दी।

हैदराबाद में यह दीक्षा का प्रथम अवसर था, उस दिन मूसलाधार वर्षा थी। भाई कैलाशचन्द ने माताजी से कहा कि किस प्रकार से इस वर्षा में खुले मैदान में दीक्षा होगी? तब माताजी ने कैलाशचन्द को एक मंत्र दिया कि इसको एक घंटा जाप्य करो, निश्चित प्रभावनापूर्वक दीक्षा होगी। ऐसा ही हुआ, वर्षा बंद हो गई और दीक्षा के समय दिगम्बर जैन, श्वेताम्बर जैन और जैनेतर समाज की भीड़ बहुत ही अधिक हुई थी।

माताजी बीमार होने के कारण बैठ भी नहीं सकती थीं लेकिन दीक्षा के समय तो पता नहीं कहाँ से स्फूर्ति आ गई और विधिवत् दीक्षा की क्रियायें एक घंटे तक स्वयं अपने हाथ से की, और नव दीक्षिता का नाम "क्षुल्लिका अभयमती" रखा। जनता को आशीर्वाद भी दिया। माताजी में यह खूबी है कि कोई भी विशेष आयोजन का मौका हो तो खुशी के कारण शरीर के कष्ट को भूल जाती हैं और उनमें स्फूर्ति आ जाती है। दीक्षा का कार्यक्रम समाप्त हो जाने के पश्चात् पुनः मूसलाधार वर्षा चालू हो गई। सभी ने एक स्वर से कहा– माताजी में बहुत ही अतिशय है। इस प्रकार सब माताजी की प्रशंसा करने लगे।

ब्र.सुरेश को भी सप्तम प्रतिमा के व्रत दिये थे, बहुत ही विरक्त थे, इनको आचार्य शिवसागर जी महाराज के पास भेज दिया और दीक्षा दिलवा दी। माताजी को स्वस्थ देखकर जयचन्द लुहाड़िया हँसते थे कि नित्य दीक्षा होने लगें तो माताजी पूर्ण स्वस्थ रहें इत्यादि.....

हैदराबाद चातुर्मास में सबसे अधिक विधान हुये थे। यहाँ के मंदिरों पर शिखर

नहीं थे क्योंकि मुसलमानी रियासत होने से उनका विरोध था कि मस्जिद के सिवाय कोई ऊँचे शिखर के मंदिर नहीं बना सकते थे। माताजी ने कहा—अब तो भारत स्वतंत्र हो गया है, अब कोई बंधन नहीं है। इस विषय में विचार- विमर्श हुआ और माताजी के कहने से जयचंद जी लुहाड़िया ने तत्काल स्वीकृति दी और केशरबाग के मंदिर पर शिखर बनना शुरू हो गया। शिखर में भगवान विराजमान करने का निर्णय हुआ। माताजी की प्रेरणा से लोगों ने ब्र.सूरजमल जी बाबाजी को बुलाया था, इनके द्वारा वेदी प्रतिष्ठा का कार्य मगशिर महीने में सम्पन्न हुआ।

मुसलमानी इलाका होने से यहाँ पर रथयात्रा नहीं निकलती थी किन्तु माताजी के आदेश से लाडनूँ वाले (कटक) फतेहचन्द जी ने रथयात्रा निकाली, लोगों ने बहुत ही उत्साह से इस कार्य को सफल बनाया।

श्रवणबेलगोल यात्रा के लिए विहार—यहाँ से विहार करके यात्रा कराने के लिए सारी जिम्मेदारी श्रावकों ने ली थी। मार्ग में मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया था जिससे डोली में बिठाकर आगे के लिए विहार किया। इस रास्ते में एक बार माघ के महीने में खुले मैदान में रात्रि व्यतीत की थी। श्रावकजन भी हमको ढूँढ-ढूँढ कर थक गये। प्रातःकाल जब रोड पर आये, तब सभी श्रावक बहुत ही घबराये हुए थे उन्होंने सब समाचार पूछा? तब माताजी ने हँसते हुए सब समाचार सुनाया। माताजी को प्रसन्न देखकर सभी के जी में जी आया। और भी मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं किन्तु पुण्ययोग से सब दूर होती रहीं।

भगवान बाहुबली के दर्शन दूर से किये—श्रवणबेलगोल पहुँचने से पहले ही बहुत दूर से भगवान बाहुबली के मुखकमल के दर्शन होने लगे थे। उस समय हृदय में हर्ष का पारावार हिलोरें ले रहा था। इसी खुशी के साथ श्रवणबेलगोल प्रवेश किया। यहाँ के वयोवृद्ध भट्टारक चारुकीर्ति जी अनेक श्रावकों के साथ कुछ दूर तक आगे आये एक पंडित के हाथ में अनेक माँगलीक वस्तुयें थीं। भट्टारक जी ने श्रीफल चढ़ाकरमाताजी एवं अन्य सभी आर्यिकाओं को नमस्कार किया, आपस में कुशलता पूछी.....

मंदिरों के दर्शन कर धर्मशाला में आ गये। यह मंगल दिवस फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी का था।

भगवान बाहुबली के साक्षात् दर्शन—रात्रि विश्राम कर दूसरे दिन प्रातः हम लोग विन्ध्यगिरि पर्वत पर चढ़े, यहाँ विशालकाय भगवान बाहुबली के दर्शन कर सारी थकान उतर गई। बाहुबली भगवान के दर्शन करके जो आनंद आया, उसको शब्दों के द्वारा नहीं कहा जा सकता है। यहाँ रहकर हिन्दी-कन्नड़ पुस्तक के माध्यम से माताजी ने हम लोगों को कन्नड़ भाषा का अध्ययन कराया और बोलचाल की भाषा से कन्नड़ बोलना भी सीख लिया और कई कन्नड़ शास्त्रों का स्वाध्याय किया।

यहाँ पर मेरा और अभयमती जी का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। माताजी ने कलकत्ता वाले वैद्य जी को बुलाया था, उनकी औषधि दी जाती थी। बड़ी माताजी दिन-रात वैयावृत्ति में लगी रहती थीं, उन्हीं के साथ पद्मावती माताजी और विशेष रूप से जिनमती माताजी वैयावृत्ति करती थीं। संबोधन करना, पाठ सुनाना आदि भी अधिकरूप से करती थीं।

माताजी की वैयावृत्ति को देखकर यात्रीगण बहुत आश्चर्य करते और कहते कि ऐसी सेवा वैयावृत्ति हमने कहीं नहीं देखी। यहाँ के भट्टारक जी भी आश्चर्य करते और कहते कि वास्तव में मेरे जीवन में मैंने किसी भी साधु-साध्वी को ऐसा उपचार-सेवा करते नहीं देखा इत्यादि.....

यहाँ की महिलायें भी कन्नड़ में भजन सुनातीं जो बहुत ही कर्णप्रिय लगता था। कुछ स्वास्थ्य सुधरने के पश्चात् माताजी ने आस-पास के गाँवों में विहार किया तथा मुझे और अभयमती को डोली से ले गये। एक माह बाद पुनः श्रवणबेलगोल आ गये।

यहाँ के सभी लोगों ने चातुर्मास के लिए प्रार्थना की और माताजी ने स्वीकृति दे दी।

माताजी को बाहुबली के चरणों में उपलब्धि—धीरे-धीरे हम दोनों का स्वास्थ्य कुछ सुधार पर आया, तब माताजी ने जिनमती माताजी से परामर्श करके सभी आर्यिकाओं से कहा कि मैं 15 दिन भगवान बाहुबली के श्रीचरणों में पर्वत पर रहूँगी और तुम सब शांति से यहाँ रहना। भट्टारक जी से बातचीत करके ऊपर में रहने की व्यवस्था बनवा ली।

माताजी पहाड़ पर पद्मावती नाम की आर्यिका माताजी को लेकर जाती थीं, मात्र आहार के लिए ही नीचे आती थीं पुनः ऊपर चढ़ जाती थीं। इस समय माताजी पूर्णरूप से निराकुल थीं। इन दिनों माताजी रात्रि में बहुत ही कम निद्रा लेतीं, बाहुबली स्वामी का ध्यान करतीं। एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में ध्यान में कुछ अलौकिक क्षेत्रों के दर्शन होने लगे। सुमेरु पर्वत से लेकर हिमवन् आदि पर्वतों पर स्थित चैत्यालयों के दर्शन हुए और भी जिन-जिन द्वीपों में चैत्यालय हैं, उन सभी मंदिरों के दर्शन हुए। उनका दिव्य प्रकाश दिखने लगा। ध्यान में जैसा-जैसा देखा अर्थात् जो रचना, जो संख्या की उपलब्धि हुई थी, उसे अपने स्थान पर आकर त्रिलोकसार में देखा तो वैसे ही चार सौ अट्ठावन चैत्यालयों की संख्या देखी। तब माताजी के हर्ष का पारावार न रहा, उन्होंने सोचा कि अवश्य ही मैंने पूर्वजन्म में इन चैत्यालयों के दर्शन किये होंगे।

पर्वत पर रहकर माताजी ने संस्कृत में वसंततिलका छन्द में बाहुबलि स्तोत्र की

रचना की, जिसके 50 श्लोक बहुत ही सरस एवं मधुर हैं। इसकी रचना होने के बाद माताजी ने हम सभी को अपने मुख से सुनाया था, उस समय बहुत ही आनंद आया और जिनमती माताजी और मैंने इस स्तोत्र को मुख जवानी याद किया और रोज बोलते थे।

इसके पश्चात् माताजी ने अपने स्थान पर ही हिन्दी बाहुबली चरित्र की रचना की, जो चौबोल छंद में 111 पद्यों में है। यहाँ पर रहते हुए माताजी ने आचार्यश्री वीरसागर जी की संस्कृत में स्तुति बनाई, आचार्य शिवसागर जी महाराज की स्तुति बनाई तथा कन्नड़ में भी माताजी ने बाहुबली स्तुति एवं बारह भावना बनाई। ये सभी उस समय छप गये थे। इसके बाद जब आचार्य विमलसागर जी महाराज श्रवणबेलगोल में पधारे, तब माताजी ने कन्नड़ में उनकी स्तुति बनाई। वह तत्काल छप गई और उस समय वितरित की गई थी।

वहाँ एक वर्ष रहकर माताजी ने अनुभव किया था कि–

'विदेशी लोग बाहुबली भगवान की नग्नमूर्ति को देखकर हँसते नहीं थे किन्तु बड़े ही कौतुक से देखते ही रहते और बहुत ही आश्चर्यमय मुद्रा बनाते थे। किन्तु भारत के कुछ जैनेतर लोग दर्शनार्थ आते तो उनकी महिलायें कपड़े से मुख ढक लेतीं और हँसती थीं। माताजी ने यह सब दृश्य देखा। वे विचार करतीं कि विदेशी लोगों में सभ्यता अधिक पाई जाती है न वे देखकर हँसते किन्तु कौतुक से देखते, वे यह समझना चाहते थे कि ये नग्न क्यों हैं इत्यादि.....

उस समय सन् 1965 में भगवान बाहुबलि का मस्तकाभिषेक होने वाला था किन्तु वर्षा न होने से आगे बढ़ा दिया। पुनः 1966 में फरवरी में अभिषेक की संभावना हुई किन्तु जल की कमी होने से स्थगित कर दिया गया। तब माताजी ने विचार किया कि अब हमारे भाग्य में महामस्तकाभिषेक देखना नहीं है, दो मौके टल गये।

कुछ समय के पश्चात् आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज का संघ यहाँ श्रवणबेलगोल में आया। भट्टारक जी ने आचार्य संघ का स्वागत किया। महान प्रसन्नता और धर्मप्रभावना का वातावरण बन गया।

भगवान बाहुबलि का लघु अभिषेक —माताजी ने आचार्यश्री से कहा कि मुझे यहाँ से विहार करना है, संघ से आचार्य शिवसागर जी महाराज, श्रुतसागर जी महाराज एवं अजितसागर जी महाराज का समाचार आ रहा है कि अब वापस संघ में आ जाओ अतः मेरी इच्छा है कि लिफ्ट से भगवान बाहुबली का अभिषेक करा दिया जाय।

आचार्य विमलसागर जी महाराज को यह बात जँच गई। सरकार को बिना

सूचना दिये ही कुछ मैसूर के लोगों से परामर्श करके अत्यंत लघु रूप में अभिषेक का प्रोग्राम बनाया गया और आचार्यश्री का संघ और हम सब ऊपर चढ़ गये, एक-दो पंडितों ने कुछ जल के घड़े लिफ्ट से ऊपर चढ़ा लिये तथा आनंदपूर्वक घड़ों से बाहुबली का अभिषेक किया गया। उस समय जो आनंद आया, वह शब्दों से कहा नहीं जा सकता। मैंने चालीस साल से देखा है कि माताजी के मानस पटल पर जो विचारधारा उभर गई, माताजी उस कार्य को करके ही चैन लेती हैं। माताजी का कार्य सफल भी निश्चित रूप से होता ही है, यह सब माताजी की उत्कट भावना और पुरुषार्थ का ही फल है कि माताजी आज तक किसी भी कार्य में असफल नहीं हुईं।

श्रवणबेलगोल से एक वर्ष के बाद माताजी ने संघ सहित विहार किया, यहाँ पर ललितम्मा, कनकम्मा आदि भक्तिमान महिलाओं ने एक वर्ष तक तन, मन, धन से खूब सेवा की तथा ललितम्मा की सुपुत्री कु.शीला माताजी के साथ पहुँचोन आई थी किन्तु माताजी में वह आकर्षण शक्ति है कि माताजी के पास रहकर वह वापस घर नहीं जा सकता, वह तो अपने जीवन को माताजी के चरणों में समर्पण कर ही देता है अतः कु.शीला भी वापस घर नहीं गई, माताजी के पास रहकर अध्ययन करने लगी।

मूड़बद्री यात्रा —माताजी ने भगवान बाहुबली के दर्शन कर तथा उनको अपने मन मंदिर में विराजमान कर एक वर्ष बाद यहाँ से मूड़बद्री के लिए संघ सहित विहार किया और 15 दिन में मूड़बद्री पहुँच गईं। यहाँ पर भट्टारक जी एवं अन्य श्रावकों ने स्वागत किया। यहाँ पर रत्नों की प्रतिमायें हैं, उनका दर्शन बहुत ही उत्तम तरीके से कराते हैं, वहाँ उन सभी प्रतिमाओं का दर्शन किया। मूड़बद्री से कारकल में भी बाहुबली की मूर्ति के दर्शन किये, वेणूर में बाहुबली की मूर्ति के दर्शन किये। कुंदकुंदाद्री, हूमच, धर्मस्थल क्षेत्र के दर्शन किये।

सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ के दर्शन कर माताजी संघ सहित सोलापुर आ गये। ब्र.सुमतिबाई सोलापुर आश्रम की संचालिका ने बहुत आग्रह कर संघ को अपने आश्रम में ही ठहराया तथा चातुर्मास कराने के लिए भी प्रार्थना की।

इधर आचार्य विमलसागर जी का संघ सहित आगमन हुआ, सभी ने मिलकर संघ का स्वागत किया। कुछ दिन बाद महाराज कुंथलगिरि के लिए विहार कर गये। माताजी की प्रेरणा से सोलापुर वाले श्रावकगण आचार्य संघ को चातुर्मास के लिए ले आये। यहां के लोगों को एक साथ दो संघ के चातुर्मास का योग मिलने से बहुत खुशी थी। आचार्यश्री शहर में ठहरे और ज्ञानमती माताजी अपने संघ के साथ आश्रम में ठहरी थीं। यहाँ पर ब्र.सुमतिबाई, ब्र.विद्युल्लताबाई स्वाध्याय में अच्छा भाग लेती थीं, खूब तत्त्वचर्चा चलती थी।

यहाँ पर शरद पूर्णिमा को माताजी की जन्मजयंती मनाई गई, इस अवसर पर आचार्य विमलसागर जी महाराज पूरे संघ सहित यहाँ आश्रम में आकर सभा में विराज गये। सभी ने अपने-अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे, अच्छे उत्साहपूर्वक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। अनेक स्कूलों में माताजी का उपदेश सुमतिबाई कराती थीं।

पं. वर्धमान शास्त्री भी माताजी की विद्या-बुद्धि से बहुत प्रभावित थे। वे कहते थे कि यद्यपि हम शास्त्री हैं, विद्यावाचस्पति हैं फिर भी राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों में कहाँ क्या लिखा है इसको समझने के लिए मुझे भी माताजी के पास आना पड़ता है। हर प्रकार की शंकाओं का समाधान माताजी बड़ी आसानी से कर देती हैं। इस प्रकार पंडित जी माताजी का बहुत ही गुणगान किया करते थे।

यहाँ पर माताजी ने त्रैलोक्य वंदना, सम्मेदशिखर वंदना और भी स्तुतियाँ संस्कृत में बनाई थीं तथा निर्वाणकांड के समान प्रभाती बनाई, जिसका नाम "उषावंदना" है। सन् 1972 में दिल्ली में ब्र.मोतीचन्द जी ने इस को रेकार्डिंग करायी थी, जो अनेक घरों में प्रातः बजती है।

जिन दिनों में माताजी ने स्तुति रचना की थी, उस समय माताजी का उपयोग स्तुति रचना की तरफ ही रहता था। एक बार क्या हुआ? माताजी नीचे उतरीं, पीछे की तरफ शौच की जगह बनी हुई थी तथा दीर्घशंका को जाना था। उपयोग चिंतन में था, कुछ भान नहीं रहा और माताजी आश्रम से बाहर निकल गईं और सामने धर्मशाला की ओर बढ़ने लगीं, उधर जाते देखकर बाईयाँ दौड़ पड़ीं – अरे! बड़ी माताजी कहाँ जा रही हैं?

माताजी के पास पहुँचकर बोलीं – माताजी! आप कहाँ जा रहे हैं? तब माताजी का उपयोग बदला और आकर शौच के लिये गये।

इसी प्रकार एक बार आहार करके शहर से आश्रम की ओर आ रही थीं। आश्रम के गेट को छोड़कर आगे बढ़ गईं, साथ में कमंडलु लेकर श्रावक चल रहा था, कुछ दूर तक तो वह साथ चला किन्तु फिर बोला–

माताजी! आपको कहाँ जाना है?

तब माताजी वापस मुड़कर आश्रम में आ गईं। जब हम लोगों को यह सब मालूम हुआ तो सब खूब हँसे। ब्र.विद्युल्लता तो माताजी की मजाक बनाती रहतीं और हँसती रहती। किन्तु माताजी के उपयोग की कितनी निर्मलता, एकाग्रता थी कि शरीर और वचन की क्रिया होते हुए भी मन तो भक्तिमार्ग में रत रहता था, उस समय माताजी के न जाने कितने अशुभ कर्मों की निर्जरा हुई होगी। माताजी कोई कार्य करती हैं, तो उसमें एकाग्र हो जाती हैं, इनका उपयोग कहीं नहीं जाता।

कई बार माताजी के उपयोग की स्थिरता देखकर मुझे विचार आता था कि

यदि माताजी पुरुष होतीं और चतुर्थकाल होता तो मुनि बनकर कर्मों को नाश करके निश्चित ही मुक्ति को प्राप्त कर लेतीं क्योंकि 'एकाग्रता विस्फोटक होती है।

आचार्य विमलसागर जी महाराज ने चातुर्मास के पश्चात् गिरनार की ओर विहार किया। माताजी को भी यहाँ से विहार कर कुंथलगिरि होते हुए औरंगाबाद पहुँचना था। ब्र.गुलाबचन्द चंडक ने संघ के विहार की व्यवस्था बना ली थी।

आर्यिका संघ का विहार —ज्ञानमती माताजी ने अपने संघ सहित यहाँ से विहार का कार्यक्रम बना लिया। आश्रम में सभा का आयोजन किया। ब्र.सुमतिबाई तो चाहती थीं कि माताजी हमेशा ही हमारे आश्रम में रहें किन्तु साधु एक जगह नहीं रह सकते। सभी ने सभा में अपने-अपने उद्‌गार व्यक्त किये। माताजी ने सभी को मंगल आशीर्वाद दिया और मंदिर जी के दर्शनकर कुंथलगिरि की ओर प्रस्थान किया, उस समय आश्रम से मालती और सुमन ये दो लड़कियाँ माताजी के साथ आ गईं।

कुंथलगिरि दर्शन—सोलापुर से विहार करके कुंथलगिरि पहुँच गये। वहाँ कुलभूषण, देशभूषण मुनियों की प्रतिमा के दर्शन किये और अन्य मंदिरों के दर्शन किये।

इसी पर्वत पर आचार्य श्री शांतिसागर महाराज जी के निषद्यास्थान में विराजमान चरणों की वंदना की।

यहाँ पर आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा दीक्षित क्षुल्लिका अजितमती माताजी ज्ञानमती माताजी से मिलने आई थीं। दोनों ने आपस में अनेक चर्चायें कीं और अनुभव की बातें की।

यहाँ से विहार कर 'तेर' अतिशय क्षेत्र, पैठण-अतिशय क्षेत्र तथा कचनेर अतिशय क्षेत्र के दर्शन किये और औरंगाबाद आ गये। यहाँ के श्रावकों ने संघ का स्वागत किया। यहाँ से गुलाबचन्द चंडक, उनकी पत्नी, बहिन वापस सोलापुर चले गये। इनकी ज्ञानमती माताजी के प्रति बहुत भक्ति थी, ये पूरे रास्ते साथ में पैदल चलते थे।

यहाँ पर महावीरकीर्ति महाराज का संघ आने वाला था, लोगों ने माताजी को प्रार्थना करके रोक लिया, महाराज के सानिध्य में दो-चार दिन रहे। पश्चात् महाराज विहार कर गये। माताजी ने यहाँ से कसाबखेड़ा के लिए विहार कर दिया। यहाँ पर हैदराबाद वाले जयचंद जी लुहाड़िया आये और उन्होंने सुना था कि ज्ञानमती माताजी के मस्तक में कोई रचना विशेष आई है। अतः उन्होंने अतिआग्रह किया कि आप एलोरा में मध्यलोक के चैत्यालयों की रचना करायें, यहाँ जगह भी बहुत है किन्तु माताजी ने कहा कि मुझे तो जल्दी ही संघ में जाना है, ऐसा कहकर टाल दिया। यहाँ पर माताजी का स्वास्थ्य भी खराब हो गया था, कुछ ठीक होने पर

माताजी ने विहार कर दिया और एलोरा पहुँच गये। यहाँ आते ही माताजी को वमन हो गया। हम सब घबराये कि प्रकृति ज्यादा न बिगड़ जाय किन्तु माताजी तो मनोबल से पहाड़ पर चढ़ गईं और वहाँ भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन किये और शांति का अनुभव किया।

यह एलोरा अपने शिल्प वैभव और स्थापत्य कला की दृष्टि से सारे संसार में प्रसिद्ध है।

यहाँ से विहार कर नाँदगाँव आ गये। यह आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागर जी महाराज की जन्मभूमि है। इसके बाद माताजी ने गजपंथा और माँगीतुंगी क्षेत्रों के दर्शन किये जिससे महान हर्ष हुआ। यहाँ से विहार कर कुसुंबा, धूलिया आदि होते हुए माताजी संघ सहित बड़वानी सिद्धक्षेत्र पर आ गईं। उस समय श्रवणबेलगोल में महामस्तकाभिषेक होने वाला था। माताजी ने ब्र.सुगन चन्द के साथ कु.शीला, जो श्रवणबेलगोल की थी, उन्हें और भंवरीबाई आदि सभी बाइयों को यात्रा के लिए भेज दिया। यद्यपि इन लोगों की इच्छा नहीं थी क्योंकि आहार की व्यवस्था संभालने वाला कोई नहीं था।

फिर भी माताजी ने कहा–साधुओं का आहार-विहार उनके भाग्य के अधीन है, तुम चिन्ता मत करो, जाओ, बाहुबली भगवान का मस्तकाभिषेक देखकर आओ, तब तक हम यहीं ठहरे हैं। ऐसा कहकर सभी को भेज दिया।

प्रातः श्रावकों का तांता लग गया, माताजी का प्रवचन हुआ, अनंतर कमंडलु का जल आ गया और शुद्धि करके आहार के लिए निकले, श्रावकों के कई चौके थे, सभी का निरंतराय आहार हो गया।

यहाँ से चूलगिरि सिद्धक्षेत्र सात किलोमीटर दूर था, बड़वानी तो नगर का नाम है। यहाँ पर दाखाबाई ब्रह्मचारिणी थीं, उन्होंने माताजी से कहा कि आप चूलगिरि पधारें, मैं आपके साथ चलूँगी और चौके आदि की सारी व्यवस्था संभाल लूँगी, मेरे साथ कई एक श्रावक-श्राविकायें चलने को तैयार हैं।

रात्रि में हम लोग यहाँ बड़वानी की धर्मशाला में सोये हुए थे, वहाँ रात्रि में यात्रियों की बस आई। हमारे कमरे में अंदर साँकल नहीं लगी थी। कुछ व्यक्तियों ने हमारे किवाड़ खोल दिये और देखकर बोले–''इतै तो विरमचारी परे हैं''।

हम सभी उठकर बैठ गये, सफेद साड़ी पहने हुए होने से और सर्दी का मौसम होने से घास में ही लपेटकर सोये हुए थे। इसलिए उन्होंने समझा कि ब्रह्मचारी लोग सोये हुए हैं। सवेरा होने पर सब यात्री दर्शन के लिए आये, तब हँसी का माहौल बन गया कि ''इतै तो विरमचारी परे हैं''।

चूलगिरि पहुँचकर विशालकाय भगवान आदिनाथ की प्रतिमा के दर्शन किये,

यहाँ आदिनाथ भगवान का अभिषेक करने के लिए पहाड़ी पर दोनों तरफ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पहाड़ की चोटी पर एक मंदिर है, यही सिद्धभूमि है। यहाँ पर चैत्र कृष्णा नवमी के दिन भगवान आदिनाथ का जन्म दिवस होने से 84 फुट उत्तुंग भगवान आदिनाथ का अभिषेक कराने की माताजी ने भावना व्यक्त की। श्रावकों ने स्वीकृति दी तथा थोड़े रूप में आयोजन रखा। 108 कलशों का अभिषेक और पंचामृत अभिषेक की तैयारी की।

''लोगों को डर था कि कहीं अभिषेक के निमित्त से मधुमक्खी छत्ते से निकलकर उपद्रव न कर दें।

किन्तु माताजी ने आत्मविश्वास से कहा–

''मधुमक्खियों का उपद्रव नहीं होगा, आप लोग निश्चिंत होकर अभिषेक करें।''

आस-पास के लोग एकत्रित हो गये और अच्छे समारोह के साथ अभिषेक संपन्न हुआ था। पश्चात् भगवान की जन्मजयंती पर माताजी का उपदेश हुआ।

यहाँ से पावागिरि सिद्धक्षेत्र पर आ गये। यहाँ की वंदना कर खरगोन होते हुए सनावद के निकट बेड़िया नाम के छोटे से गाँव आ गये। यहाँ पर सनावद के कुछ श्रावक-श्राविका आ गये और माताजी से सनावद विहार करने के लिए प्रार्थना की। यहाँ से विहार करके चैत्र सुदी पूर्णिमा को सनावद आ गये। लोगों ने स्वागत किया और मंदिरों के दर्शन करते हुए धर्मशाला में जुलूस सभा के रूप में परिणत हो गया। बाल ब्रह्मचारी मोतीचन्द जी ने माताजी को श्रीफल चढ़ाकर आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की–माताजी! हम लोगों को मंगल आशीर्वाद प्रदान कीजिये। माताजी ने आशीर्वादरूप में मंगल प्रवचन दिया, सभा विसर्जित हुई। उसी समय देवेन्द्रकुमार ने मोतीचन्द जी का परिचय दिया, माताजी ने प्रसन्नता व्यक्त की। 4-5 दिन बाद माताजी ने सिद्धवरकूट दर्शन के लिए कहा, तब लोगों ने कहा कि माताजी! आप यहीं ठहरें, गर्मी बहुत है, कुछ दिन बाद सिद्धवरकूट के दर्शन करना। हम लोग आपका चातुर्मास यहीं करायेंगे और चातुर्मास के बाद मुक्तागिरि की यात्रा करायेंगे पुनः आचार्य संघ में पहुँचा देंगे। सनावद की भक्ति देखकर और गर्मी विशेष होने से माताजी ने ब्र. सुगनचन्द को कह दिया कि अब हम चातुर्मास के बाद ही संघ में पहुँचेंगे।

यहाँ पर महिला मण्डल और नवयुवक मंडल था, ये सभी भक्ति में एक से एक आगे थे।

मध्यलोक चैत्यालय की रूपरेखा–

यहाँ मध्यलोक के चैत्यालय की चर्चा आई, लोगों ने रुचि से विवरण सुना और भावना बनी कि सिद्धवरकूट में यह रचना बहुत सुन्दर बनेगी। अब लोगों में इस

कार्य के लिए उत्साह जागृत होने लगा, इस कार्य में मोतीचन्द जी, रखबचन्द जी, कमलाबाई आगे हो गये। मोतीचन्द जी ने बालकृष्ण पेंटर को बुलाकर सुमेरु पर्वत का चित्र बनवाया।

सिद्धवरकूट क्षेत्र दर्शन —माताजी ने अपने संघ सहित सिद्धवरकूट के लिए विहार किया। गर्मी में वहाँ कई दिन तक रहे।

कुछ समय बाद इन्दौर समाज के विशेष आग्रह से माताजी ने संघ सहित इंदौर के लिए विहार कर दिया।

इंदौर में शिक्षण शिविर —माताजी की आज्ञा से यहाँ सनावद के नवयुवक मंडल और महिला मंडल ने इंदौर में शिक्षण शिविर का आयोजन रखा। इसमें द्रव्यसंग्रह, छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र आदि का शिक्षण दिया।

सनावद के लोगों ने चातुर्मास के लिए प्रार्थना की। माताजी की आज्ञा से सनावद वाले आचार्य शिवसागर जी महाराज से आज्ञा लेकर आये। आचार्यश्री का माताजी के प्रति वात्सल्य देखकर सभी जन बहुत प्रभावित हुए। इधर इंदौर वालों का भी चातुर्मास करने का बहुत जोर चल रहा था। इन्दौर वाले हीरालाल जी कासलीवाल ने माताजी से कहा– माताजी! यह भव्य मध्यलोक की रचना इंदौर में ही बनवाइये। यहाँ शहर में सभी साधन सुलभ रहेंगे।

किन्तु माताजी के मस्तिष्क में एक ही बात थी कि यह रचना तीर्थक्षेत्र पर ही होनी चाहिए अतः माताजी ने कहा– जहाँ योग होगा, वहीं होगा। यहाँ वालों का अत्यंत आग्रह होने पर भी माताजी ने सनावद की ओर विहार किया और इंदौर से सनावद आ गये। चातुर्मास स्थापना का मंगल अवसर आ गया। सभा में श्रीफल चढ़ाते समय माताजी ने अमोलकचंद को लक्ष्य करके कहा–अमोलकचंद जी! आप अपने बेटे को मुझे गोद दे दीजिये। उन्होंने सहजभाव से कहा–आपका ही बेटा है। आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की पूर्व रात्रि में चातुर्मास की स्थापना की थी। विद्यार्थी जन पढ़ने आते थे, शिक्षण शिविर भी चल रहा था और कार्यक्रम भी चलते रहे। इसी मध्य सेठ हीरालाल जी (निवाई वाले) व ब्र. सूरजमल जी यहाँ आए और बोले– माताजी! चातुर्मास के बाद आप विहार करके संघ में पहुँचो। आचार्यश्री की इच्छा है कि मध्यलोक की रचना श्री महावीर जी क्षेत्र पर बनवाई जाए। यहाँ चातुर्मास प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ।

मुक्तागिरि तीर्थ के लिए विहार —सनावद की सेठानी मंदिरमाय और कमलाबाई ने कहा कि आप यहाँ से ही मुक्तागिरि की यात्रा कर लीजिये, पीछे तो असंभव हो जायेगी।

आर्यिका जिनमती माताजी को चातुर्मास में बहुत दिनों तक मलेरिया बुखार

आया था जिससे उनका स्वास्थ्य कमजोर हो गया था, अतः उन्होंने यात्रा के लिए मना कर दिया। क्षुल्लिका अभयमती ने पहले यात्रा की थी इसलिए माताजी ने इन दोनों को यहीं सनावद में रहने का आदेश दिया और संघस्थ पद्मावती जी, मैं (आदिमती), क्षुल्लिका श्रेयांसमती इनको साथ लेकर माताजी ने यात्रा करने के लिए विहार कर दिया। व्यवस्था सेठानी मंदिरमाय और मोतीचंद जी ने संभाली और भी श्रावक-श्राविका साथ में थे। दक्षिण प्रांत में तीन चातुर्मास हुए, मेरा स्वास्थ्य खराब ही रहा। माताजी मेरे लिये सब जगह डोली की व्यवस्था करवाती थीं किन्तु जैसे ही मध्यप्रदेश आया, स्वास्थ्य स्वयमेव सुधर गया और डोली छूट गयी। दक्षिण प्रांत की जलवायु मेरे शरीर-स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं थी इसलिए स्वास्थ्य बिगड़ा रहा। विहार करते हुए क्रम से परतवाड़ा पहुँचे, यहाँ पर श्रावकों में अच्छी भक्ति-रुचि थी। माताजी का प्रवचन सुनकर सभी बहुत ही प्रभावित हुए।

मुक्तागिरि क्षेत्र दर्शन —तीर्थक्षेत्र पर पहुँचकर मंदिर के दर्शन किये और धर्मशाला में ठहर गये। आहार अनंतर मध्यान्ह में तीर्थ वंदना के लिये ऊपर चढ़ गये और मंदिरों के दर्शन किये। इस क्षेत्र के दो नाम हैं– मुक्तागिरि और मेढ़ागिरि। इस क्षेत्र पर 4-5 दिन रहकर वापस परतवाड़ा आ गये और यहाँ से खंडवा होते हुए वापस सनावद आ गये। सभी का स्वास्थ्य ठीक रहा। सनावद आने के बाद आचार्य शिवसागर जी महाराज के संघ में पहुँचने का कार्यक्रम बनाया।

आचार्य संघ की ओर विहार —सनावद में माताजी को दो शिष्यों का लाभ हुआ– बालब्रह्मचारी मोतीचंद जी और यशवंतकुमार। दोनों को माताजी ने वैराग्य का उपदेश देकर संघ में चलने के लिए तैयार कर लिया। सनावद से विहार किया, संघ तक पहुँचाने के लिए कई लोग साथ में थे। संघ बड़वाह, इन्दौर होते हुए रतलाम आया, वहाँ से बाँसवाड़ा आ गये।

शिष्य लाभ —बाँसवाड़ा में माताजी ने एक दिन उपदेश में कहा–

यदि प्रत्येक गाँव के एक-एक श्रावक अपनी एक-एक पुत्री मुझे दे दें तो मैं उन्हें पढ़ाकर विदुषी बना दूँ और घर-घर में सीता-मनोरमा जैसी नारीरत्न दिखने लगें।

इस उपदेश से प्रभावित होकर पन्नालाल नाम के एक श्रावक ने वहीं सभा में अपनी 9 वर्षीय पुत्री कनकमाला और 12 वर्षीय पुत्री कलावती दोनों को माताजी के पास बिठा दिया और बोले–

"माताजी! पाँच वर्ष के लिए इन दोनों कन्याओं को मैं आपको देता हूँ।" सभा के अंदर सभी ने करतल ध्वनि से उनका सम्मान किया। माताजी ने दोनों से पूछा–

बेटी! तुम माता-पिता को छोड़कर मेरे पास रहोगी?

वे दोनों बोलीं–हाँ माताजी! रहेंगे।

उस समय उनको उसी रूप में माताजी ने ले लिया, उनको पढ़ा-लिखाकर खूब योग्य बनाया पुनः उनमें से एक कन्या कनकमाला वापस घर चली गई और कु. कला तथा उसकी दूसरी बहन मनोरमा वर्तमान में आर्यिका कैलाशमती और सम्मेदशिखरमती के नाम से आत्मकल्याण में तत्पर हैं। यहाँ पर एक बार आम सभा में माताजी का प्रवचन हो रहा था, लोहारिया का एक बालक उपदेश सुनकर माताजी के पास आया और बोला–

माताजी! मैं आपके संघ में रहूँगा, शादी नहीं करूँगा किन्तु उनके माता-पिता जबरदस्ती उस लड़के को ले गये।

कुछ दिन बाद वह लड़का विमलसागर जी महाराज के संघ में पहुँच गया और क्षुल्लक दीक्षा ले ली। जब श्री महावीर जी में सन् 1969 में विमलसागर महाराज जी का संघ आया था, वहीं पर आचार्य धर्मसागर जी महाराज का संघ था, तब इन क्षुल्लक जी ने आकर ज्ञानमती माताजी से कहा–माताजी! मैं तो आपके पास कुछ दिन रहकर व्याकरण, न्याय, सिद्धांत ग्रंथों का अध्ययन करना चाहता हूँ।

माताजी ने कहा–मैं किसी के शिष्य को उनके गुरु की आज्ञा के बिना नहीं रखती। क्षुल्लक जी ने गुरु से आज्ञा मांगी किन्तु गुरुजी ने मना कर दिया। वे क्षुल्लक जी आचार्य भरतसागर जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आचार्य संघ के दर्शन —यहाँ से विहार करके अनेक गाँवों में होते हुए साबला से गेंदीबाई को माताजी ने अपने साथ लिया और सलूम्बर होते हुए करावली पहुँचे, उधर संघ से आर्यिका विशुद्धमती आदि आर्यिकायें क्षुल्लक संभवसागर जी आदि साधुगण, श्रावकगण स्वागत के लिए आ गये। हम छहों माताजी, माताजी के सभी शिष्यगण आचार्यश्री के निकट पहुँचे। उस दिन पाँच वर्षों के बाद आचार्यश्री शिवसागर जी महाराज के दर्शन किये। उस समय हम सभी की आँखों से हर्ष के आँसू बह रहे थे। गुरु-शिष्य के मिलन को सभी बड़ी उत्कंठा से देख रहे थे।

संघ की महिलायें, मोतीचंद, यशवंत, कु. शीला, कु.सुशीला, कला, कनक, गेंदीबाई सभी ने आचार्यश्री के दर्शन किये, आचार्यश्री ने सभी को प्रसन्नता से देखा और बोले–

''ज्ञानमती जी खूब संघ बढ़ाकर लाई हैं।''

आचार्यश्री ने सभी को आशीर्वाद दिया, आपस में कुशलता पूछी। मुनि श्रुतसागर जी आदि सभी मुनियों के दर्शन किये, आर्यिकाओं को वंदामि-प्रतिवंदामि किया, सभी बहुत प्रसन्न थे।

आचार्य संघ के साथ सलूंबर आये, यहाँ पर आचार्यश्री ने बम्बई वाले महाराज मोतीलाल जी, जो क्षुल्लक थे, उनको यहाँ पर मुनिदीक्षा दी और

ज्ञानमती माताजी के पास क्षुल्लिका श्रेयाँसमती थीं, उनको आर्यिका दीक्षा दी, इनका नाम श्रेष्ठमती रखा।

अध्ययन कार्य —कु. विमला, जो आर्यिका संभवमती जी की शिष्या थी, उसने माताजी से कहा–माताजी! बहुत दिनों से ज्ञान में मैंने आपका नाम सुना था। मैं आपसे व्याकरण आदि पढ़ना चाहती हूँ। माताजी ने कहा–ठीक है, मेरी शिष्या जिनमती जी तुम्हें पढ़ायेंगी। पश्चात् जिनमती माताजी ने पढ़ाना शुरू कर दिया, अभी वह विमला आर्यिका शुभमती जी हैं।

सलूंबर में ज्ञानमती माताजी ने कई एक आर्यिकाओं को जीवकांड पढ़ाना शुरू किया, उसमें ब्रह्मचारिणियाँ भी बैठती थीं। कुछ दिन बाद माताजी ने मुझसे कहा कि तुम इन सभी को गोम्मटसार पढ़ाओ, माताजी की आज्ञा से मैंने सभी को पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। संघ की शीला, सुशीला आदि सभी लड़कियों को माताजी भी पढ़ाती थीं, कुछ विषय जिनमती माताजी, कुछ विषय मैं पढ़ाती, इस प्रकार सारा समय अध्ययन-अध्यापन में व्यतीत होता था।

माताजी का स्वास्थ्य कमजोर होने से और उनका सदा ही यह भाव भी रहता था कि मेरी शिष्यायें दूसरों को पढ़ाकर अपने ज्ञान को प्रस्फुटित करें, इसी ध्येय से दूसरों को पढ़ाने के लिए प्रेरणा दिया करती थीं।

चातुर्मास निकट आ रहा था, अनेक गाँव के श्रावक चातुर्मास कराने के लिए प्रार्थना कर रहे थे किन्तु आचार्यश्री ने प्रतापगढ़ चातुर्मास करने का आश्वासन दे दिया और प्रतापगढ़ की ओर विहार कर दिया। वहाँ के श्रावकों में हर्ष की लहर दौड़ गई। आचार्यश्री के विशाल संघ का चातुर्मास सन् 1968 में प्रतापगढ़ में हुआ, अनेक चौके अनेक श्रावकों के होने पर भी निमंत्रण की कुछ गड़बड़ी हो जाती थी, आचार्यश्री ने ज्ञानमती माताजी को बुलाकर कहा–कु.शीला के पास कुछ रुपये हैं?

माताजी ने कहा–हाँ, महाराज जी! हैं। तब आचार्यश्री ने शीला से कहा–तुम अपने भोजन की व्यवस्था बना लो, बिना निमंत्रण के तुम लोग भोजन के लिए नहीं जाना। एक बार सेठ हीरालाल जी निवाई वाले आये और हँसते हुए बोले–

माताजी! आपके सानिध्य में मोतीचंद और यशवंत ये दो छात्र हैं। कु.सुशीला, शीला, कला, मनोरमा, गेंदीबाई, ताराबाई ये छह छात्रायें हैं, सब से बड़ा परिवार आपका ही है।

तब माताजी ने कहा– मैंने कभी भी इनकी व्यवस्था के लिए आचार्यश्री से न ही कहा है और न ही किसी भी श्रावकों की शिकायत ही की है, फिर आप मेरे शिष्यों की गिनती क्यों कर रहे हो?

वे हँसकर चुप हो गये।

प्रतापगढ़ चातुर्मास में टिकैतनगर से माताजी के माता-पिता और छोटा भाई रवीन्द्र कुमार भी साथ में आये थे। माताजी के सामने तो कोई भी छोटी उम्र का आना चाहिये, उसके भावों में त्याग की भावना बिल्कुल भी न हो परन्तु माताजी के मुख-कमल को देखते ही उसमें परिवर्तन होने लगता है तथा जिसमें विरक्ति है, उसका तो कहना ही क्या है! माताजी ने रवीन्द्र कुमार को समझाकर दो वर्ष का ब्रह्मचर्यव्रत दे दिया और छोटी बहिन कामिनी 13 वर्ष की थी, उसको अपने पास संघ में रखने का बहुत प्रयास किया, वह भी रहना चाहती थी किन्तु पिताजी उसको जबरदस्ती ले गये और रवीन्द्र कुमार पढ़ाई कर रहे थे, इस कारण वे भी साथ में ही चले गये।

यहाँ पर मुनि जयसागर जी और आर्यिका सिद्धमती जी की समाधि हुई थी। चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री ने अपने विशाल संघ के साथ विहार का प्रोग्राम बनाया।

अतिशय क्षेत्र महावीर जी की ओर विहार —प्रतापगढ़ की जैन समाज ने यात्रा कराने की सारी जिम्मेदारी संभाल ली थी। रास्ते में ब्र.गुरुजी चाँदमल जी कीसमाधि हो गई थी, इन्होंने स्वयं कह दिया था कि मेरी नबज बिगड़ गई है, यह सुनकर सब हँसने लगे। जब उनकी तबियत बिगड़ने लगी, तब माताजी ने आचार्यश्री से जाकर कहा। आचार्यश्री ने उनको मुनिदीक्षा दी और कुछ समय के बाद ही वे स्वर्गस्थ हो गये।

अतिशय क्षेत्र महावीर जी के दर्शन —आचार्य संघ यहाँ महावीर जी आकर भगवान महावीर मंदिर की धर्मशाला में ठहर गया। सभी मंदिरों के दर्शन किये। यहाँ पर शांतिवीर नगर में एक विशालकाय 28 फुट ऊँची खड्गासन भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा का ही पंचकल्याणक होने वाला था।

इसी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के लिए आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के विशाल संघ को लेकर आये थे। प्रतिष्ठा की तैयारियाँ जोरों से चल रही थी। प्रतिष्ठा का मुहूर्त फाल्गुन की आष्टान्हिका में था।

आचार्य श्री अस्वस्थ —आचार्यश्री को फाल्गुन कृ. अष्टमी को बुखार आ गया। आचार्य श्री को आहार लेने में कंठ में भी कुछ तकलीफ हो रही थी। वैद्यों ने मुनिश्री श्रुतसागर जी आदि के समक्ष एकांत में कुछ शंका व्यक्त की।

बातचीत के दौरान में आचार्यश्री से पूछा–महाराज जी! यदि आप इतनी दूर पाँडाल में नहीं जा सके तो दीक्षा कौन देंगे? ....

आचार्यश्री ने कहा–नहीं नहीं, मैं स्वस्थ हो जाऊँगा, मैं चलूँगा। कई दिन पहले ज्ञानमती माताजी कई शिष्य-शिष्याओं को दीक्षा की प्रार्थना कराने हेतु ले गई थीं। क्षुल्लिका अभयमती, क्षुल्लक संभवसागर, यशवंतकुमार, ब्र.असर्फी बाई, ब्र.विद्यावती मुनि एवं आर्यिका दीक्षा लेना चाहते थे। आचार्य श्री ने इन सभी को स्वीकृति प्रदान

की थी। बहुत प्रसन्न हुए और सभी को आशीर्वाद दिया।

आचार्य श्री ने माताजी से मोतीचंद की दीक्षा के लिए भी कहा था, किन्तु ये अभी दीक्षा लेने को तैयार नहीं हुए।

"उस समय कौन जानता था कि निकट भविष्य में ही क्या होने वाला है।"

सभी को बड़ी चिंता हो रही थी कि आचार्यश्री कैसे स्वस्थ हों?

माताजी को मन में आ रहा था कि कलकत्ता से वैद्यराज केशवदेव जी को बुला लें, परन्तु हो कुछ भी नहीं पाया।

"इधर फाल्गुन कृष्णा अमावस्या ने यमराज को बुलाया"।

आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज की समाधि —मध्यान्ह सामायिक के पश्चात् आचार्य श्री लघुशंका के लिए उठे। मध्य में गड़बड़ हो गई। आचार्य श्री ने बहुत ही खेद व्यक्त किया। शुद्धि करके कमरे में आकर बैठ गये। वहाँ पर अनेक साधुजन उपस्थित थे, समाचार मिलते ही माताजी भी वहाँ पहुँचीं। कुछ क्षण बाद ही आचार्यश्री ध्यानमुद्रा में बैठ गये, सभी साधुवर्ग णमोकार महामंत्र का उच्चारण करते रहे। आचार्यश्री ने इस नश्वर शरीर को छोड़कर दिव्य वैक्रियक शरीर प्राप्त कर लिया। इधर एकदम हा हाकार मच गया। उस समय तो ऐसा लगा मानों हृदय पर वज्रपात हो गया हो। बिजली के समान सारे क्षेत्र में खबर पहुँच गई, जयपुर आदि शहरों में भी फोन से समाचार दे दिये गये।

उसी दिन सायंकाल में शांतिवीर नगर में आचार्यश्री के पार्थिव शरीर की अन्तिम संस्कार क्रिया की गई।

मुनि श्री धर्मसागर संघ —मुनि श्री धर्मसागर जी सन् 1958 में ब्यावर से ही अलग विहार करके चले गये थे। इस प्रतिष्ठा में ये भी अपने संघ सहित आये हुए थे।

सभी मुनि-आर्यिका आदि साधुवर्ग को इस अकस्मात् समाधि से बड़ा दुःख था, प्रतिष्ठा प्रारंभ के मात्र छह दिन ही शेष थे। आचार्यश्री वात्सल्य मूर्ति थे, सभी के प्रति बहुत ही वात्सल्य रखते थे। आचार्य श्री का अनुशासन भी बहुत कठोर था, सभी के परम हितैषी थे। इसी कारण उनका अभाव सभी के लिए दुःख का कारण बन गया।

"आचार्य पद के योग्य संघ में मुनि श्री श्रुतसागर जी ही थे, उनको ही आचार्य बनाने की बात थी किन्तु इनसे बड़े धर्मसागर जी महाराज थे अतः विचार-विमर्श करके फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को भगवान के तपकल्याणक के दिन आचार्यपट्ट धर्मसागर जी महाराज को दिया गया और इन नूतन आचार्य के करकमलों से ग्यारह दीक्षायें हुईं।

महावीर जी से विहार —आचार्यश्री ने संघ सहित जयपुर के लिए विहार कर दिया और पद्मपुरी तीर्थ के दर्शन कर जयपुर खानिया में पहुँच गये।

वर्षायोग स्थापना —जयपुर के लोग चातुर्मास जयपुर में कराना चाहते थे। आचार्यश्री ने बक्सी जी के चौक में पदार्पण किया। आचार्यश्री की आज्ञा से गुरुकुल की स्थापना की मंजूरी हुई। आषाढ़ शुक्ला चौदस के दिन पूर्वरात्रि में वर्षायोग स्थापना की गई।

यहाँ जयपुर चातुर्मास में माताजी ने आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज को अनगार धर्मामृत की पंक्तियाँ दिखाईं और प्रार्थना की कि–

महाराज जी! सांवत्सरिक प्रतिक्रमण शास्त्राधार से आषाढ़ मास की चतुर्दशी को ही होना चाहिये।

आचार्यश्री मुस्कराये और बोले–ठीक है। अतः उन्होंने आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को ही वार्षिक प्रतिक्रमण किया और तभी से लेकर आचार्यश्री इसी प्रकार प्रतिक्रमण करते आये हैं।

इसी प्रकार पहले वर्षायोग स्थापना दिन में होती थी किन्तु माताजी ने आचार्यश्री को शास्त्र प्रमाण दिखाकर रात्रि में चातुर्मास स्थापना करना प्रारंभ करवाया।

अष्टसहस्त्री अनुवाद —माताजी ने ब्र.मोतीचन्द से बम्बई परीक्षालय से शास्त्री का फार्म भरवा दिया और कलकत्ता की संस्कृत शिक्षा परिषद परीक्षालय से न्यायतीर्थ का फार्म भरवा दिया था। इन दोनों कोर्स में अष्टसहस्री ग्रन्थ था, यह न्याय का उच्चतम ग्रन्थ है, इसकी संस्कृत बहुत कठिन है। मोतीचन्द जी ने कई बार कहा–माताजी! इस ग्रन्थ को मूल से पढ़कर मैं परीक्षा नहीं दे सकता।

माताजी ने इस ग्रन्थराज की हिन्दी करना प्रारंभ कर दिया। इस ग्रन्थ की प्रारंभिक कुछ पृष्ठों की हिन्दी हुई थी, उसे देखकर मोतीचन्द जी तो प्रसन्न हुये ही, किन्तु पं.भंवरलाल जी न्यायतीर्थ, जो माताजी द्वारा रचित 'जिनस्तवनमाला' आदि पुस्तकों को अपनी प्रेस में छपा रहे थे, वे इस कार्य को देखकर बहुत ही हर्षित हुए। संस्कृत विद्यालय के प्राचार्य पं.गुलाबचंद जैन दर्शनाचार्य एवं पं.इन्द्रलाल शास्त्री बहुत ही प्रसन्न हुए। इस प्रकार और अनेक विद्वानों ने माताजी से कहा कि माताजी! इस ग्रन्थ की हिन्दी टीका आपसे अच्छी और कोई नहीं कर सकता है अतः इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद आप ही करें। यह एक महान कार्य है।

सन् 1970 में टोंक चातुर्मास के बाद टोडारायसिंह में पौष शुक्ला बारस को इस ग्रन्थ के अनुवाद को माताजी ने पूरा किया और इसके चौवन सारांश बनाये। जिनको पढ़कर 1972 में त्रिशला, माधुरी, मालती, रवीन्द्रकुमार, मोतीचंद आदि माताजी के शिष्यों ने परीक्षा देकर सफलता प्राप्त की थी।

माताजी ने जैन ज्योतिर्लोक शिविर लगाया —यहाँ जैन दर्शन विभाग के प्राचार्य पं.गुलाबचंद जैन को जैन भौगोलिक विषय से अच्छा प्रेम था। माताजी ने

आचार्य धर्मसागर जी महाराज की आज्ञा लेकर पन्द्रह दिन का "जैन ज्योतिर्लोक" पर शिक्षण शिविर का आयोजन किया।

सभी विद्वान और श्रेष्ठीवर्ग कापी लेकर बैठते थे। माताजी मुख्य रूप में लोकविभाग ग्रन्थ के आधार से इस ज्योतिर्लोक का शिक्षण देती थीं। शिविर के बाद माताजी ने 'जैन ज्योतिर्लोक' नामक पुस्तक छपवाई थी।

दीक्षा समारोह —खानिया में एक कुमारिका शांतिबाई मुजफ्फरनगर से माताजी के पास आई, माताजी ने इसको अध्ययन कराना शुरू करा दिया और धीरे-धीरे उसे वैराग्य की ओर मोड़ दिया। उसकी इसी चातुर्मास में दीक्षा बहुत ही प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुई थी। यहाँ पर अनेक प्रकार की प्रभावना के साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। आचार्यश्री ने सांगानेर के लिए विहार कर दिया।

यहाँ पर माताजी का स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया, उसी समय माताजी के पिता छोटेलाल जी के स्वर्गवास का समाचार मिला था, उनका समाधिमरण उनके घरवालों ने बहुत अच्छी तरह से करवाया था। ब्र. मोतीचंद जी टिकैतनगर गये थे।

वहाँ से विहार कर आचार्य संघ निवाई आ गया। महावीर जयंती के समय यहाँ पर एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। एक जैनेतर महानुभाव ने स्त्रीमुक्ति के बारे में प्रतिपादन कर दिया।

माताजी ने स्त्रीमुक्ति का खंडन अनेक युक्तियों के द्वारा किया। माताजी के उपदेश से वे विद्वान बहुत प्रसन्न हुए और बोले–माताजी! मैंने श्वेताम्बर ग्रन्थों का ही अध्ययन किया है, दिगम्बर ग्रन्थों का अध्ययन नहीं किया है।

यहाँ पर आचार्यश्री की आज्ञा से माताजी गोम्मटसार का अध्ययन कराती थीं। उसमें सभी मुनिराज विराजते थे और अनेक आर्यिकायें भी बैठती थीं। स्वाध्याय के बीच मुनिश्री अभिनंदनसागर जी महाराज बोले–"आर्यिका ज्ञानमती माताजी कुशल शिल्पी हैं, गढ़-गढ़ कर मूर्तियाँ बनाती हैं और आचार्यश्री उनकी प्रतिष्ठा करके–उन्हें दीक्षा देकर मुनि-आर्यिका बनाकर उन्हें पूज्य बना देते हैं।"

इन शब्दों को सुनकर सेठ हीरालाल जी ने भी कहा–माताजी! आप इन छोटे-छोटे साधुओं को खूब सिद्धान्तादि ग्रन्थों का अध्ययन कराकर इन्हें आर्षपरम्परा के अच्छे योग्य साधु बना दो।

वर्षायोग स्थापना —वहाँ से विहार करके संघ टोंक आ गया। गर्मी में ही यहाँ आ गये थे पश्चात् चातुर्मास का समय होने से विधिवत् चातुर्मास की स्थापना की। यहाँ पर अच्छी धर्म की प्रभावना हुई थी। इस चातुर्मास में माताजी की माँ सबसे छोटी बेटी त्रिशला को लेकर आई थीं। वह 9 वर्ष की थी, इस बालिका की बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, माताजी इस बच्ची के लिये भी माँ से आग्रह करने लगीं कि इसे मेरे पास

छोड़ दो, कुछ वर्ष पढ़ाकर मैं वापस भेज दूँगी, चिंता मत करो। यह कु. त्रिशला सन् 1970 में माताजी के पास रहने लगी थी और 1979 तक रही, बाद में घर चली गई। इस चातुर्मास में माताजी की शिष्या आर्यिका पद्मावती जी ने 32 दिन के उपवास किये थे, इन उपवासों में मात्र चार बार ही गर्म जल लिया था, माताजी के पास 5-5 घंटों तक स्वाध्याय में बैठी रहती थीं, थकती नहीं थीं, माताजी विश्राम करने के लिए कहतीं, तब वे बोलतीं–अम्मा! आपके मुख से दिन भर पढ़ने और पढ़ाने में धर्म सुन-सुनकर मैं अमृत जैसी तृप्ति का अनुभव करती हूँ। इस प्रकार आनंद और प्रभावनापूर्वक चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

अनेक जगह भ्रमण करते हुए आचार्य संघ मालपुरा आ गया। यहाँ पर सोलापुर से धार्मिक परीक्षा के प्रश्न पत्र आ गये। माताजी ने सभी विद्यार्थियों को परीक्षा में बिठाया। ब्र.मोतीचंद, रवीन्द्रकुमार, कु.शीला, कु.सुशीला, कु. विमला, कु.मालती, कु.कला, कु.त्रिशला आदि सभी ने शास्त्री की परिक्षायें दीं, उत्तर कापियाँ सोलापुर भेजी गईं। सभी पास हो गये और सभी के प्रमाण-पत्र आ गये।

सन् 1971 के चातुर्मास के लिए अजमेर के श्रावकों का विशेष आग्रह चल रहा था अतः आचार्यश्री ने स्वीकृति दे दी और संघ अजमेर पहुँच गया। यहाँ आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की पूर्वरात्रि में सरसेठ भागचंद जी सोनी की नशिया में आचार्यश्री ने अपने विशाल संघ सहित वर्षायोग की स्थापना की।

इस चातुर्मास में एक बार हुकुमचन्द भारिल्ल आये थे, अष्टसहस्री का कुछ प्रकरण उनको माताजी से पूछना था, उस प्रकरण को समझकर वे बोले–

माताजी! आपने जो अष्टसहस्री का अनुवाद किया है, वह शीघ्र ही प्रकाशित होना चाहिये, इसमें बहुत रत्न भरे हैं, छपने के बाद वे अपना प्रकाश फैलायेंगे।

यहाँ पर चार माताजी का समाधिमरण हुआ। प्रायः सभी उपवासों के बीच ही स्वर्गस्थ हुईं। माताजी के पास रहने वाली आर्यिका पद्मावती जी ने इन उपवासों में बाईस उपवासों के पश्चात् एक बार गर्म जल लिया था और इक्कीसवें उपवास में स्वास्थ्य गड़बड़ हुआ, माताजी ने आचार्यश्री को बुलाया, इन माताजी ने आचार्यश्री को नमोस्तु किया, माताजी ने संबोधन दिया और देखते-देखते क्षण भर में नश्वर शरीर को छोड़कर स्वर्गस्थ हो गईं।

इस चातुर्मास में माताजी की माँ मोहिनीदेवी भी घर से पूर्ण विरक्त होकर माताजी के पास आ गईं थी और इनका भाव दीक्षा लेने का हुआ। इन्होंने माताजी से कहा–माताजी! अब मेरी इच्छा घर जाने की नहीं है। तीनों लड़के योग्य हैं, छोटा लड़का आपके पास है ही। माधुरी, त्रिशला अभी छोटी हैं, उनके भाई उनकी शादी कर देंगे। इत्यादि.....

माताजी ने माधुरी को तो उसकी इच्छानुसार पूर्व में ही सुगंधदशमी के दिन आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया था। उस समय उसकी उम्र मात्र 13 वर्ष की थी पुनः मगशिर वदी तीज को माँ मोहिनी देवी, कु.विमला और कु.फूलाबाई की आर्यिका दीक्षा हुई और भी मुनिदीक्षा हुई थीं। मोहिनी देवी का नाम रत्नमती रखा क्योंकि ये अनेक रत्नों की खान हैं अतः इनका नाम रत्नमती सार्थक था। इनकी दीक्षा के बाद कैलाशचंद, छोटे भाई रवीन्द्र को जबरदस्ती घर ले गये कि ये कहीं ब्रह्मचर्य व्रत नहीं ले लेवें किन्तु माधुरी, त्रिशला उस समय नहीं गईं। कैलाशचन्द की पुत्री मंजू भी उस समय माताजी के पास रह गई थी।

अजमेर चातुर्मास के बाद आचार्यश्री ने पीसांगन नाम के छोटे से गाँव के लिए विहार किया।

इधर माताजी ने विचार किया कि आचार्य देशभूषण जी महाराज अजमेर आने वाले हैं, इधर आकर दिल्ली जायेंगे। इनके दर्शन की तीव्र उत्कंठा जाग उठी तथा आचार्यश्री से उनके दर्शन करने के लिए आज्ञा ले ली। पीसांगन से आचार्यश्री कालू के लिए विहार कर गये। माताजी और मैं (आदिमती), श्रेष्ठमती, रत्नमती जी, मुनिश्री संभवसागर जी महाराज, वर्धमानसागर जी रुक गये। माताजी की प्रथम शिष्या जिनमती माताजी भी संघ के साथ माताजी की आज्ञा लेकर चली गईं। यद्यपि माताजी को जिनमती माताजी के जाने से बहुत दुःख हुआ था किन्तु ज्ञान, वैराग्य के द्वारा अपने मन को सांत्वना दी।

यहाँ पर ब्यावर के लोगों ने आकर ब्यावर के लिए आग्रह किया। कुछ दिनों बाद माताजी ने संघ सहित ब्यावर की ओर विहार कर दिया। ब्यावर में प्रातः प्रतिदिन माताजी का उपदेश होता था। मध्यान्ह में छहढाला की कक्षा चलती थी। माताजी अष्टसहस्री, राजवार्तिक और जैनेंद्र प्रक्रिया का अध्ययन कराती थीं। उसमें संघ के सभी माताजी, महाराज, ब्रह्मचारी और लड़कियाँ सभी भाग लेते थे।

माताजी ने अनेक प्रयास करके रवीन्द्रकुमार को बुला लिया और वैराग्य-वर्धक अनेक प्रकार से शिक्षा, उपदेश देकर दृढ़ किया तत्पश्चात् मोतीचन्द जी को भेजकर नागौर में विराजमान आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज से रवीन्द्र कुमार को आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया। वहाँ की समाज ने रवीन्द्रकुमार का सम्मान किया और ये दोनों लौटकर ब्यावर आ गये।

दिल्ली विहार की चर्चा—माताजी की आज्ञा से यहाँ ब्यावर में पंचायती नशिया में जम्बूद्वीप का मॉडल बनवाया था, उसे बनते हुए देखकर फलटन से आये हुए माणिकचंद गाँधी बहुत प्रसन्न हुए और बार-बार माताजी से प्रार्थना करने लगे कि इस निर्वाण महोत्सव के प्रसंग पर यह रचना अभूतपूर्व रहेगी। अखिल भारतीय स्तर पर इसका प्रचार होना चाहिए। आप दिल्ली पधारें तो अच्छा रहेगा। सरसेठ भागचन्द

जी सोनी, सेठ हीरालालजी रानीवाला से परामर्श करने पर उन्होंने भी इसी बात की पुष्टि की और भी अनेक जनों ने माताजी को यही सलाह दी कि माताजी! आप दिल्ली पधारें, निर्वाणमहोत्सव को सफल बनाने के लिए आप जैसे साधुओं की बहुत आवश्यकता है। माताजी ने संघ के सभी साधु-साध्वियों से परामर्श किया पश्चात् मोतीचंद जी को नागौर आचार्यश्री की आज्ञा लेने भेजा। आचार्यश्री की आज्ञा प्राप्त होने पर माताजी ने संघ सहित दिल्ली के लिए विहार कर दिया। नसीराबाद में आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज के दर्शन हुए थे, मन बहुत हर्षित हुआ।

इस प्रकार ब्यावर से जयपुर और जयपुर से कोटपुतली होते हुए दिल्ली पहुँचना था। मार्ग में गुड़गाँवा नाम का ग्राम आया, यहाँ पर दिल्ली के मुनिभक्त सेठ जयनारायण जी सपरिवार दर्शनार्थ आये, अपना परिचय दिया और प्रार्थना की–

माताजी! यह चातुर्मास दिल्ली में आपको हमारे पहाड़ी धीरज ही करना है, हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिए।

इससे पहले डॉ.कैलाशचन्द जैन राजाटॉयज भी एक-दो बार आ चुके थे और निवेदन भी कर चुके थे। पहाड़ीधीरज की सारी व्यवस्था समझकर माताजी ने स्वीकृति दे दी। यहां से विहार कर केंट होते हुए नई दिल्ली राजाबाजार के मंदिर के दर्शन किये। यहाँ से जयनारायण जी ने संघ का भव्य स्वागत किया और बहुत ही प्रभावनापूर्वक पहाड़ी धीरज में प्रवेश कराया और धर्मशाला में ठहराया था।

दूसरे दिन सभी ने अतिथि भवन में विराजमान आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज के दर्शन किये। ये माताजी के क्षुल्लिका दीक्षा के गुरू थे। सन् 1954 के बाद आर्यिका दीक्षा लेकर पद विहार करते हुए आज 1972 में आषाढ़ शुक्ला बारस के दिन माताजी ने आचार्यश्री के दर्शन किये थे और बहुत ही आनंद हुआ। आचार्य महाराज ने भी बहुत दिन बाद माताजी को देखा था तथा माताजी की उन्नति को देखकर बहुत ही प्रसन्नता व्यक्त की थी। आचार्यश्री की आज्ञा से माताजी ने संघ सहित चातुर्मास की स्थापना की। यहाँ पर सभी प्रकार से व्यवस्था ठीक थी। सावन में गर्मी अधिक पड़ जाने से और मार्ग के श्रम के कारण माताजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। संग्रहणी का प्रकोप बढ़ गया और आहार कम हो गया। माताजी का स्वास्थ्य खराब हो गया है, यह सुनकर आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज स्वयं माताजी को आशीर्वाद देने आये और उपदेश में बोले–ये ज्ञानमती आर्यिका मेरी शिष्या हैं, इन्होंने घर छोड़ते समय जो पुरुषार्थ किया है, वह आज पुरुष के लिये भी असंभव है। इनका स्वास्थ्य अस्वस्थ सुनकर मैं इन्हें आशीर्वाद देने आया हूँ। अभी इन्होंने न्याय के सर्वोच्च ग्रन्थ अष्टसहस्री का हिन्दी अनुवाद करके एक अभूतपूर्व कार्य किया है। ये शीघ्र ही स्वस्थ हों, इनसे समाज को बहुत कुछ मिलने वाला

है। ऐसी सुयोग्य शिष्या को देखकर मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। इस प्रकार से आचार्यश्री के वचनामृत सुनकर जनता भाव विभोर हो गई और माताजी के प्रति श्रद्धा स्रोत उमड़ पड़ा।

जम्बूद्वीप योजना —यहाँ पर जम्बूद्वीप योजना की चर्चा फैल चुकी थी। इस योजना को साकार करने के लिए मोतीचंद जी वहाँ के कार्यकर्ताओं के साथ जगह की खोज में इधर-उधर लोगों से मिलते थे और जगह भी देखते थे। डॉ.कैलाशचंद जी ने इन्जीनियरों से परामर्श कर जम्बूद्वीप का मॉडल तैयार करवाया।

पर्यूषण पर्व —इन दिनों में माताजी ने प्रतिदिन दो-दो घंटे तत्त्वार्थसूत्र के एक-एक अध्याय पर अपना प्रवचन दिया। वहाँ पर सभी कहते कि हमने इतनी उम्र में अनेक विद्वानों के प्रवचन सुने किन्तु जितना रहस्यमय सरल शब्दों में माताजी ने सुनाया है, नीरस को सरस बनाया है, वैसा हमने आज तक किसी से भी नहीं सुना है। उस समय इतनी भीड़ होती थी कि सड़कों तक लोगों की भीड़ लगी रहती थी। धर्मशाला ऊपर नीचे सभी जगह भर जाती थी, कितने लोग तो जगह के अभाव में दुःखी होकर लौट जाते। डॉ.कैलाशचन्द ने सभी उपदेशों के कैसेट तैयार करवा लिये थे।

यहाँ पर माताजी ने पहाड़ीधीरज की एक महिला और एक शाहदरा की महिला इन दोनों को आचार्य देशभूषण जी महाराज से दीक्षा दिलवाई थी।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना —अनेक श्रावकों– लाला श्यामलाल जी, डॉ.कैलाशचन्द जी आदि ने कहा कि इतने बड़े निर्माण कार्य के लिये एक संस्थान की स्थापना होना चाहिए।

''अतः दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान'' नाम से एक संस्थान की स्थापना की गई और उसी दिन वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला नाम से एक ग्रंथमाला की भी स्थापना कर दी गई।

निर्वाणोत्सव की तैयारियाँ —यहाँ प्रायः कभी साधुओं में, कभी चारों संप्रदाय के लोगों में मीटिंग चलती रहती थीं। निर्वाणोत्सव को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाने के लिए देश ही नहीं, विदेश में भी भगवान महावीर के आदर्श जीवन और अहिंसामयी उपदेशों को पहुँचाने के लिए जोरदार तैयारियाँ हो रही थीं। आचार्य देशभूषण जी महाराज माताजी को भी हर एक कार्य में बुलाते थे।

आचार्य धर्मसागर जी महाराज संघ सहित अलवर आये थे, वहाँ से समाचार विदित हुआ कि आचार्य श्री यहाँ आ चुके हैं। तब माताजी ने कार्यकर्ताओं को बुलाकर आचार्यश्री को दिल्ली लाने के लिए समझाना शुरू किया तत्पश्चात् श्रावकों ने अनेक बार मीटिंग की क्योंकि इतने बड़े संघ की आहारादि की व्यवस्था कैसे होगी? इस प्रकार से लोगों को भय था किन्तु माताजी ने अनेक उदाहरणों के द्वारा

समझाया तथा गाँधीनगर जाकर माताजी ने जैसे-तैसे श्रावकों को तैयार किया और लाला श्यामलाल जी ठेकेदार आदि श्रावकों को नारियल चढ़ाने के लिए अलवर भेज दिया। दिल्ली के श्रावकों ने अलवर पहुँचकर आचार्य श्री धर्मसागर जी के समक्ष श्रीफल चढ़ाकर निवेदन किया कि गुरुदेव! आप को दिल्ली पधारकर निर्वाणोत्सव को सफल बनाना है इत्यादि..... तब माताजी के हर्ष का पारावार नहीं रहा। दिल्ली शक्तिनगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी, वहाँ आचार्य देशभूषण जी महाराज का संघ और आर्यिका ज्ञानमती माताजी के संघ को ले गये। वहाँ पर आहार में हैण्डपम्प के पानी को लेने की समस्या उपस्थित हुई, उन लोगों ने माताजी को बहुत प्रकार से समझाने का प्रयास किया कि हैण्डपम्प का पानी शुद्ध है, जब माताजी ने उनकी बात नहीं मानी, तब वे लोग कुछ गरम भी हुए। माताजी ने यहाँ से विहार करने का विचार कर लिया किन्तु माताजी की दृढ़ता को देखकर विनम्र होकर बोले कि हम प्रतिष्ठा के पहले किसी भी प्रकार नहीं जाने देंगे, भले ही एक मील दूर से कुँए का पानी लाना पड़े किन्तु उनको नजदीक ही कुँआ मिल गया और माताजी की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि माताजी बहुत दृढ़ हैं। अपने नियम-धर्म की रक्षा में अडिग रहती हैं।

सन् 1974 में मोतीचंद जी ने अपने भाव व्यक्त किये कि आपके वचनामृत जन-जन में पहुँचें, ऐसी इच्छा है अतः एक मासिक पत्रिका निकालना चाहते हैं। इस प्रकार पत्रिका के लिए रूपरेखा तैयार होने लगी किन्तु इसमें भी विघ्नबाधायें आईं किन्तु 'सम्यग्ज्ञान' नाम की पत्रिका का प्रथम अंक छप गया और आचार्य धर्मसागर जी महाराज के करकमलों से 'सम्यग्ज्ञान' पत्रिका का विमोचन करवाया गया।

जम्बूद्वीप का मॉडल माताजी की आज्ञा से बनाया गया था और हस्तिनापुर की 1975 की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में उसका उद्घाटन हुआ था। माताजी की तीव्र भावना थी कि इस सुन्दर आकर्षक मॉडल को भारत में भ्रमण कराकर जनमानस को जम्बूद्वीप का परिचय कराया जाए और भगवान महावीर के अहिंसामयी उपदेशों का जैनेतर लोगों में खूब प्रचार हो।

इसी भावना के अनुसार सन् 1982 में 'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति' नाम से पुनः एक आकर्षक जम्बूद्वीप के मॉडल को बनवाया गया और दिल्ली के लालकिला मैदान में 4 जून 1982 को भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के करकमलों से उसके प्रवर्तन का शुभारंभ करवाया गया। यह ''जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति'' सारे भारत में लगभग तीन वर्ष घूमी थी।

हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र का दर्शन —भगवान शांतिनाथ की जन्मभूमि हस्तिनापुर के दर्शनों की अभिलाषा जागृत हुई। उस समय माताजी ने यात्रा की रूपरेखा बनाई। संघ में संभवसागर जी महाराज, वर्धमानसागर जी, मैं (आदिमती), श्रेष्ठमती जी, रत्नमती जी, यशोमती, संयममती थीं।

फाल्गुन के महिने में माताजी ने हस्तिनापुर के लिये विहार किया। यहाँ भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरहनाथ के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान इन चार-चार कल्याणकों से पवित्र भूमि की वंदना कर बहुत आनंद हुआ। हस्तिनापुर में माताजी ने जम्बूद्वीप निर्माण के बारे में चर्चा चलाई।

वहाँ के महामंत्री सुकुमार चंद जी ने कहा ''यह अपूर्व रचना यहीं हस्तिनापुर पवित्र तीर्थ पर ही बननी चाहिए।''

इन्होंने माताजी को जंबूद्वीप रचना के लिए जगह दिखलाई थी किन्तु माताजी ने कहा – मैं दिल्ली जाकर आगे विचार कर निर्णय करूँगी। ऐसा उत्तर देकर माताजी ने हस्तिनापुर से विहार कर दिया।

मेरठ में सहसा समाचार मिला कि आचार्य धर्मसागर जी महाराज ससंघ दिल्ली के निकट आ चुके हैं और जल्दी ही दिल्ली पहुँचने वाले हैं।

माताजी ने निर्णय किया कि आचार्यश्री के पहुँचने के पहले अपने को पहुँचना है अतः मेरठ से विहार कर दिया। गुरु दर्शन की सभी की तीव्र भावना थी। दिल्ली में पहाड़गंज के निकट पहुँचकर मुनिसंभवसागर जी और वर्धमानसागर जी, तथा हम छह आर्यिकायें आचार्यश्री के दर्शन करने पहुँच गये।

जब आचार्य धर्मसागर जी संघ और आचार्य रत्न देशभूषण जी महाराज का संघ दोनों संघ, कूचा सेठ के बड़े मंदिर से आहार को निकलते थे, तब वह दृश्य देखते ही बनता था।

माताजी ने पुनः हस्तिनापुर के लिए विहार किया और वहाँ पहुँचकर मोतीचंद जी ने अलग से जगह खरीदी और सुदर्शनमेरु का शिलान्यास कर दिया। चातुर्मास दिल्ली ही करना है, समय बहुत कम रह गया था अतः माताजी ने दिल्ली के लिए विहार कर दिया। गर्मी भयंकर पड़ रही थी, चलाई अधिक होने से माताजी को खून के दस्त लगने लगे फिर भी माताजी साहस करके चातुर्मास की स्थापना के दिन दिल्ली पहुँच गईं और चातुर्मास का उपवास किया।

दिल्ली लालमंदिर में आचार्य श्री धर्मसागर जी ने ससंघ चातुर्मास की स्थापना की। साहू शांतिप्रसाद जी ने चातुर्मास स्थापना के लिए निवेदन किया और फूलों के गुच्छे चढ़ाये। आचार्य संघ दरियागंज आ गया था और सभी व्यवस्था यहाँ हो गई थी। दशलक्षण पर्व में मुनि विद्यानंद जी प्रातः प्रवचन करते थे, मध्यान्ह में आचार्य धर्मसागर जी महाराज तत्त्वार्थ सूत्र पर प्रवचन करते और ज्ञानमती माताजी प्रतिदिन एक-एक धर्म पर प्रकाश डालती थीं। दशलक्षण के बाद प्रायः हर सप्ताह निर्वाणोत्सव को मनाने के लिए साधुवर्ग में सभायें होती रहती थीं। विद्यानंद जी महाराज कई बार माताजी को बुलाकर परामर्श करते थे। कभी माताजी की अस्वस्थता देखकर

माताजी के स्थान पर आकर भी विषय शुरू कर देते थे। मुनि श्री की सरलता और वात्सल्य भावना का ही यह परिणाम था कि निर्वाण महोत्सव बहुत ही सफलता के साथ सम्पन्न हुआ था।

अष्टसहस्री का विमोचन —27 अक्टूबर 1974 में अष्टसहस्री ग्रन्थ के विमोचन समारोह का निर्णय हुआ। विमोचन समारोह दरियागंज बालाश्रम के प्रांगण में मनाया गया। उस समय आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज , आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज संघ सहित विराजमान थे, पूज्य मुनि विद्यानंद जी थे। इनके अतिरिक्त मुनि श्री सुशील कुमार जी (स्थानकवासी), आचार्यतुलसी जी के संघ के शिष्यगण, श्वेताम्बर साध्वी विचक्षणाश्री आदि उपस्थित थे। माताजी ने दोनों आचार्यों को ग्रन्थ समर्पण किया।

साध्वी विचक्षणा जी ने कहा कि–

आर्यिका ज्ञानमती जी ने ऐसे महान ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद करके नारी जगत के मस्तक को ऊँचा किया है।

विद्यानंद जी, सुशीलकुमारजी मुनि ने कहा–''न्यायग्रन्थों के पठन-पाठन से दृष्टि में निर्दोषता आती है।

माताजी द्वारा लिखित अन्य ग्रन्थों का भी विमोचन हुआ था। यथा 'भगवान महावीर कैसे बने' 'तीर्थंकर महावीर और उनका धर्मतीर्थ' 'सामायिक' ''जैन ज्योतिर्लोक'' ''न्यायसार''।

2500 वाँ निर्वाण महोत्सव —इस पावन महोत्सव की तैयारियाँ कई वर्षों से चल रही थीं। इस पावन बेला पर चारों सम्प्रदाय के जैन साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं ने मिलकर महोत्सव को सफल बनाया। 13 नवम्बर से 20 नवम्बर 1974 तक कार्यक्रम आयोजित किये गये। ज्ञानमती माताजी भी संघ सहित इस महोत्सव की सफलता के हेतु दो वर्ष पूर्व ही दिल्ली आ गई थीं। 15 नवम्बर 1974 को एक विशाल जुलूस का आयोजन रखा गया था। इस मीलों लम्बे विशाल जुलूस में मोतीचन्द जी ने छह फुट चौकोर जम्बूद्वीप के रंगीन आकर्षक चित्र को एक टेम्पो पर रखकर निकाला था जिससे जम्बूद्वीप के विषय में लोगों को जानकारी मिली। 17 नवम्बर 1974 को मध्यान्ह में दो बजे से दिल्ली के रामलीला मैदान में विशाल सभा का आयोजन हुआ। यहाँ बड़े-बड़े तीन मंच बनाये गये थे– एक पर दिगम्बर-श्वेताम्बर साधु, दूसरे पर प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी व अन्य राजनैतिक धार्मिकजन, तीसरे पर दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदाय की साध्वियाँ विराजी थीं।

एक दिन विश्व धर्म सम्मेलन में मुनिश्री सुशीलकुमार जी ने ज्ञानमती माताजी का प्रवचन रखा था। माताजी ने बहुत ही मार्मिक और सरल शब्दों में समझाया।

दीक्षा समारोह —मगसिर कृष्णा 10, तदनुसार दिनाँक 8-12-1974 के दिन कतिपय दीक्षार्थियों का दीक्षा समारोह सम्पन्न हुआ। दरियागंज में विशाल पांडाल बनाया गया था। सर्वप्रथम कु.सुशीला कलकत्ता (आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी की सुपुत्री) और कु.शीला (श्रवणबेलगोल) इन दोनों ब्रह्मचारिणियों ने आर्यिका दीक्षा के लिए आचार्य श्री धर्मसागर जी के समक्ष नारियल चढ़ाकर प्रार्थना की थी। इनके साथ कई की मुनि एवं आर्यिका दीक्षा होने वाली थी। इनमें कु.सुशीला, कु.शीला दोनों आर्यिका ज्ञानमती माताजी की शिष्या थीं।

दीक्षा के 2-4 दिन पहले साहू शांतिप्रसाद जी आचार्य धर्मसागर जी महाराज के पास आये और बोले–

महाराज जी! आज के जमाने में आपको इतनी छोटी उम्र में दीक्षा नहीं देनी चाहिए। इनको खूब अध्ययन कराकर पश्चात् दीक्षा देनी चाहिए इत्यादि।

आचार्यश्री बोले–

'थेई ले लो– अर्थात् आप ही दीक्षा ले लीजिये क्योंकि आप तो विद्वान हैं, श्रीमान् हैं।

बेचारे साहू जी चुप हो गये।

अधिकतर ऐसा देखा जाता है कि जो विद्वान हैं, वे दीक्षा लेते नहीं तथा आप जैसे श्रीमन्त हैं, वे भी नहीं लेते अतः जो लेते हैं, उन्हें देना ही होता है।

माताजी ने कहा–

बात ऐसी है कि दीक्षा का सम्बन्ध उम्र से या विद्वत्ता से नहीं है, प्रत्युत् वैराग्य से है। जिसे वैराग्य है, वही दीक्षा का पात्र है।

इधर दरियागंज में दीक्षार्थी बालिकाओं की विनोरी (शोभायात्रा) निकाली जाती थी। लोग धर्म प्रेम में उत्साह से हर एक कार्य में भाग ले रहे थे।

इस दीक्षा के अवसर पर आचार्य रत्न देशभूषण जी महाराज संघ सहित विराजमान थे, आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज संघ सहित विराजमान थे और मुनि श्री विद्यानंद जी महाराज भी विराजमान थे।

दीक्षार्थी ऐलक कीर्तिसागर, क्षुल्लक गुणसागर, क्षुल्लक भद्रसागर जी की मुनिदीक्षा हुई। क्षुल्लिका मनोमती, ब्र.भागाबाई इनका नाम क्रम से संयममती, विपुलमती रखा। ब्र.कु.सुशीला का नाम श्रुतमती रखा और ब्र.कु.शीला का नाम शिवमती रखा गया। ब्र.वज्रभान को क्षुल्लक दीक्षा दी, उनका नाम निर्वाणसागर रखा गया। ये सभी दीक्षा आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज ने दी थीं। इनमें से दोनों कुमारिकाओं की दीक्षा ज्ञानमती माताजी करा रही थीं क्योंकि ये माताजी के पास ही रहती थीं। उस समय इन दोनों के बड़े-बड़े केशों का लोच माताजी कर रही थीं एवं अन्य आर्यिकायें भी कर रही थीं। दीक्षा का यह दृश्य बहुत ही वैराग्यवर्धक और रोमांचकारी था।

उपाध्याय आदि पद प्रदान किया —इसी मंगल अवसर पर आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज ने मुनि श्री विद्यानंद को उपाध्याय पद प्रदान किया था तथा ज्ञानमती माताजी को 'आर्यिकारत्न' तथा ''न्याय प्रभाकर'' पद से गौरवान्वित किया था।

25 दिगम्बर मुनिराज —इस अवसर पर निर्वाण दिवस से ठीक 25वें दिवस अर्थात् दीक्षा के दिन निर्वाण महोत्सव के प्रसंग में 25 दिगम्बर मुनिराज एक साथ एक मंच पर विराजमान थे।

हस्तिनापुर में संघ का आगमन —दिल्ली चातुर्मास और निर्वाणोत्सव का कार्यक्रम सम्पन्न होने के पश्चात् आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज ने ससंघ हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र के दर्शन करने के लिए विहार कर दिया।

यहाँ हस्तिनापुर में 20 फरवरी 1975 से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी।

भगवान महावीर की प्रतिमा विराजमान —इसी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अवसर पर माताजी जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान महावीर की सवा नौ फुट की खड्गासन जिनप्रतिमा विराजमान करना चाहती थीं किन्तु स्थान नहीं बन पाया था। अनेक प्रकार की परेशानी आई किन्तु माताजी दृढ़ता से कार्य के प्रति सजग ही रहीं, मोतीचन्द और रवीन्द्रकुमार को धैर्य दिलातीं अतः इन्होंने मंदिर बनाने का कार्य प्रारंभ किया।

आचार्य श्री संघ सहित हस्तिनापुर आ गये। प्रतिष्ठा प्रारंभ हुई। जब भगवान महावीर की मूर्ति की पेटी खोली गई, तब विद्यानंद जी महाराज ने कहा–माताजी! यह मूर्ति बहुत ही सुन्दर है और बहुत ही चमत्कारिक है। वास्तव में उन उपाध्याय जी के वचन फल गये। इस मूर्ति के खड़े होते समय उनके नीचे 'अचलयंत्र' आचार्य धर्मसागर जी महाराज ने स्थापित किया था।

आश्चर्य की बात यह है कि सन् 1975 की फरवरी से जिस छोटे से गर्भागार में भगवान महावीर स्वामी विराजमान किये गये थे, वे आज तक वहीं पर खड़े हैं। माताजी ने भी यह निश्चय कर दिया था कि ये प्रतिमाजी यहीं पर ही विराजमान रहेंगी। दैवयोग से सन् 1990 में ये कमलमंदिर बन चुका है।

यहाँ पर मुनि श्री वृषभसागर जी ने सल्लेखना धारण की थी, बहुत ही उत्कृष्ट सल्लेखना हुई थी।

वैशाख सुदी तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन यहाँ सुमेरु पर्वत का कार्य प्रारंभ किया गया।

1975 का चातुर्मास आचार्यश्री ने सहारनपुर किया था तथा इनके संघ के सुपार्श्वसागर जी आदि मुनिगण और आर्यिकाओं ने मुजफ्फरनगर चातुर्मास किया। मुनि सुपार्श्वसागर जी ने 12 वर्ष की सल्लेखना ले रखी थी, उनका काल पूरा होने से उन्होंने यहाँ यमसल्लेखना शुरू कर दी थी।

सुपार्श्वसागर जी महाराज ने समाचार भिजवाये कि ज्ञानमती माताजी सल्लेखना के अवसर पर आयें अतः माताजी दशलक्षण के बाद हस्तिनापुर से मुजफ्फरनगर आ गये क्योंकि सल्लेखना के लिए 96 मील तक चातुर्मास में भी साधु जा सकते हैं। यहाँ पर क्षपक मुनिश्री सुपार्श्वसागर जी महाराज ने माताजी से सल्लेखना के विषय में कई बार परामर्श किये। अनन्तर माताजी 29 अक्टूबर को विहार कर वापस हस्तिनापुर चली गईं। सहारनपुर चातुर्मास समाप्त कर आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज संघ सहित मुजफ्फरनगर पधार गये। सल्लेखनारत श्री सुपार्श्वसागर जी दो-तीन दिन बाद चातुर्मास में दूध-पानी ले रहे थे। यहाँ पर आचार्यश्री के करकमलों द्वारा ग्यारह दीक्षा हुई थीं।

1976 का चातुर्मास खतौली में किया। यहाँ पर माताजी ने इन्द्रध्वज विधान की रचना की पुनः माताजी हस्तिनापुर आ गये। यहाँ पर माताजी ने नियमसार का हिन्दी अनुवाद किया एवं अन्य कई पुस्तकें लिखीं। इसी प्रकार सर्वतोभद्र, इन्द्रध्वज आदि अनेक विधानों की रचना की है। आज जहाँ पर भी जो विधान होते हैं प्रायः माताजी द्वारा रचित विधानों से पूजन मंडल विधान होते हैं, श्रावकगण पूजन की लय में भक्तिविभोर हो जाते हैं। जम्बूद्वीप स्थल पर माताजी ने अनेक बार शिक्षण शिविरों के आयोजन करवाये। जिनमें अनेक विद्वान आकर माताजी के विशिष्ट ज्ञान से लाभ लेते रहे हैं। 1978 के शिक्षण शिविर में जैन सिद्धांत संरक्षिणी सभा, अ.भा.दि. जैन युवा परिषद, शास्त्री परिषद और दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान ने माताजी को अभिनंदन पत्र समर्पित कर ''सिद्धान्तवाचस्पति'' उपाधि से विभूषित किया।

सुदर्शन मेरु प्रतिष्ठा की घोषणा —रविवार 29 अप्रैल से 3 मई 1979 तक सुदर्शन मेरु जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सव, हस्तिनापुर में होना निश्चित हुआ। ब्र.सूरजमल जी बाबाजी के द्वारा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाने का निर्णय हुआ। यह प्रतिष्ठा अपने आप में एक विशेष ही थी। प्रतिष्ठा की तैयारियाँ जोर-शोर से होने लगीं। प्रतिष्ठा का प्रचार-प्रसार करने के लिए संस्थान के प्रचारमंत्री मोतीचंद जी, रवीन्द्रकुमार आसाम, गोहाटी, कलकत्ता आदि गये।

इस प्रतिष्ठा में प्रतिमाओं को सूरिमंत्र पूज्य आचार्यकल्प मुनिराज श्रेयांससागर जी महाराज (जो कि सन् 1990 में आचार्य शांतिसागर परम्परा के पंचम पट्टाचार्य हुए हैं) ने दिया था। अंत में सुमेरु पर्वत के सोलह चैत्यालयों में बहुत ही आसानी से जिनबिम्बों की स्थापना की गई। गजरथ महोत्सव हुआ, अनेक आकर्षक झाँकियाँ सजाई गईं और भी अनेक आयोजन किये गये थे। इसी अवसर पर आचार्य वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना हुई।

जम्बूद्वीप रचना का शिलान्यास —हस्तिनापुर जम्बूद्वीप स्थल पर जम्बूद्वीप

का प्रथम चरण सुदर्शनमेरु पर्वत बनकर उसकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। अब जम्बूद्वीप के हिमवन् आदि पर्वतों का निर्माण करना था। 1980 में इसका शिलान्यास हुआ। इस दिन लगभग 5 हजार लोगों की भीड़ हो गई। 1980 का चातुर्मास दिल्ली अतिथिभवन कूचा बुलाकी बेगम में स्थापित किया। इस चातुर्मास में भी 'भगवान बाहुबली' 'भरत-बाहुबली' आदि अनेक पुस्तकें माताजी ने लिखी थीं। इस समय माताजी द्वारा लिखित साहित्य का 1 लाख की संख्या में हिन्दी भाषा में प्रकाशन हुआ और पचास हजार इंग्लिश में छपी थीं।

जम्बूद्वीप मॉडल के भारत भ्रमण की रूपरेखा —दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की बैठक हुई, उसमें जम्बूद्वीप के मॉडल को बनवाकर भारत भ्रमण कराया जाय, यह निश्चित किया गया था। जम्बूद्वीप सेमिनार नाम से गोष्ठी का आयोजन किया गया।

ज्ञानमती माताजी की जन्मदात्री आर्यिका रत्नमती माताजी का अभिनंदन ग्रन्थ सन् 1983 में रत्नमती माताजी के चरणों में समर्पित किया गया जिन्होंने सन् 1985 में सभी प्रकार की मोह ममता को छोड़कर अपनी आवश्यक क्रियाओं में सजग रहते हुए नश्वर शरीर का त्याग किया। इन्होंने 9 पुत्री, 4 पुत्र इन 13 रत्नों को जन्म दिया। 13 वर्ष दीक्षित अवस्था में रही थीं। अंत में सल्लेखनापूर्वक मरण किया।

गणिनी पद —28 अप्रैल से 2 मई तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन विशाल स्तर पर किया गया था। इसी पंचकल्याणक में ज्ञानमती माताजी की प्रमुख शिष्या आर्यिका जिनमती माताजी ने आगे होकर गणिनी पद की क्रियायें की अर्थात् इस अवसर पर माताजी को गणिनी पद से विभूषित किया गया।

13 अगस्त 1989, श्रावण शुक्ला 11, रविवार को माताजी ने कु. माधुरी, जो माताजी की छोटी बहिन है, उनको आर्यिका दीक्षा दी। दीक्षा के पहले इनका ओक शहर और गाँवों में स्वागत एवं शोभायात्रा निकाली गई थी। माताजी ने कु.माधुरीके लम्बे केशों का लोंच कर डाला, केशलोंच में उत्तीर्ण होने के पश्चात् मंगलस्नानादि करवाकर माताजी ने कु.माधुरी के मस्तक पर आर्यिका दीक्षा के संस्कार कर आर्यिकाचंदनामती जी बना दिया। इनने भी माताजी के पास रहकर अध्ययन के साथ-साथ संस्थान के अनेक कार्यों में सहयोग दिया है। भजन, पद्य, विधान-पूजन आदि की रचना करती हैं तथा अन्य लेखन एवं षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणिटीका का अनुवाद भी किया है। मैंने पहले भी बतलाया है कि माताजी के सभी भाई-बहिनों की बुद्धि तीक्ष्ण है अतः सभी यथासंभव बुद्धि का सदुपयोग करते हैं। सभी के अंदर माताजी के संस्कारपड़े हुए हैं, प्रायः सभी ने त्यागमार्ग में आने का प्रयास किया किन्तु सभी सफल नहीं हो सके।

पूज्य गणिनी माताजी इस वर्तमान युग की एक महान धरोहर हैं। इन्होंने

अपने महान पुरुषार्थ के बल पर, मनोबल के द्वारा विभिन्न प्रकार के धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन कर समाज में धार्मिक जागृति की है। जम्बूद्वीप की रचना उनके द्वारा दी गई एक अमूल्य निधि है जिसके द्वारा चिरकाल तक समाज को धार्मिक स्फुरण एवं प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी।

दिगम्बर जैन साहित्य में प्रायः न्याय, व्याकरण या अध्यात्म ग्रन्थों के प्रणेता रचनाकार आचार्य ही रहे हैं। प्राचीन ग्रन्थों में भी कोई आर्यिका प्रणीत ग्रन्थ या टीकायें देखने में नहीं आईं।

किन्तु यह महान हर्ष और गौरव की बात है कि इस 20 वीं शताब्दी में तत्वज्ञान की मर्मस्पर्शी तथा चारों अनुयोगों के साथ-साथ भूगोल विद्या की उद्भट विद्वत्ता माताजी के अंदर ही है जिसका प्रतीक जम्बूद्वीप है, और उनके द्वारा लिखित साहित्य है। माताजी ने 200 ग्रन्थों को अपने बौद्धिकबल से लिखकर जगत को ज्ञानज्योति में लाकर खड़े करने का भरसक प्रयास किया है। पूज्य माताजी के पास योजनाओं का प्लान बनाने का कम्प्यूटर के समान माइण्ड है। इन्होंने बहुमुखी विकास किया है। इसी कारण धर्म प्रभावना के कार्य प्रतिक्षण चल रहे हैं। जिसे आने वाली पीढ़ी युगयुगों तक याद करेगी। आपकी करुणा का कोई ओर-छोर नहीं है, वह अपरिमित और महान है।

सन् 1976 से जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परमपूज्य गणिनी प्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने पूजा-विधानों का लेखन प्रारंभ किया, तभी से समाज में पाँचों प्रकार की पूजायें सरस हिन्दी भाषा में उपलब्ध हो रही हैं। श्रावकलोग इन्हें बड़े-बड़े स्तर पर आयोजित करके महती धर्म प्रभावना का परिचय दे रहे हैं।

माताजी द्वारा रचित सभी विधानों में 'कल्पद्रुम मण्डल विधान' एक महाकृति है जिसके नायक चौबीस तीर्थंकर हैं, समवसरण उनकी लक्ष्मी है। यह छन्द, रस, अलंकार अलंकृत है, इसके साथ-साथ यह भक्ति, अध्यात्म, सिद्धांत आदि से पूर्ण समाविष्ट है।

भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती महोत्सव वर्ष के अंतर्गत विश्व में प्रथम बार राजधानी दिल्ली में विश्वशांति एवं मानसिक शांति, पर्यावरण की शुद्धि हेतु गणिनी प्रमुख आर्यिकाश्री ज्ञानमती माताजी के ससंघ सानिध्य में चौबीस कल्पद्रुम महामंडल विधान का विराट आयोजन 4 अक्टूबर से 13 अक्टूबर 1997 तक सानंद महती प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ।

माताजी के प्रयास एवं भावना के अनुसार जो कार्य कभी नहीं हुए, ऐसे अनेक कार्य हुए हैं। माताजी का मस्तिष्क कम्प्यूटर से भी जल्दी काम करता है, जिस समय माताजी किसी भी योजना के विषय का प्रतिपादन करती हैं, उस समय मेरे जैसा सुनने वाला तो सुनकर ही हैरान हो जाय, क्योंकि माताजी को सोचकर बोलने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, सभी प्रकार के विषय माताजी के मस्तिष्क में फिट हैं। अविराम तत्-तत् विषयसम्बन्धी वाणी निकलती है।

चतुर्थ काल में भी अपने-अपने काल में एक-एक तीर्थंकर पैदा हुए और उनके समवसरण की रचना हुई और उनकी दिव्य देशना से असंख्य प्राणियों को सत् पथ प्राप्त हुआ किन्तु माताजी की करामात तो देखो, उनके मस्तिष्करूपी कम्प्यूटर ने चौबीसों तीर्थंकरों के चौबीसों समवसरण एक ही स्थान पर विराजमान कर दिए। ऐसा अभूतपूर्व कार्य आज तक कभी नहीं हुआ जो ज्ञानमती माताजी ने किया है। आज भारत में बालब्रह्मचारिणी दिगम्बर जैन साध्वियों में पूज्य गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी ही सभी में वरिष्ठ हैं तथा ज्ञान, बुद्धि की अपेक्षा भी श्रेष्ठ हैं। तभी तो पंचमकाल में भी चौबीसों तीर्थंकरों के समवसरण पृथ्वी पर अवतरित करके दिखा दिये।

पुनः इन सर्वोच्च साध्वी ज्ञानमती माताजी के मस्तक में विचारधारा दौड़ी कि आज यह हमारा भारत निम्न स्तर पर जा रहा है, हिंसा का बोलबाला है, अण्डों को शाकाहार कहकर उसका खुलेआम प्रचार हो रहा है, माँसाहार बढ़ता जा रहा है, बूचड़खाने अपना अड्डा जमाते जा रहे हैं जिनमें असंख्य मूक पशुओं को मौत के घाट उतारा जाता है, ऐसी भारत की दयनीय दशा को देखकर अहिंसा, सुख, शांति, क्षेम, कल्याण का उपदेश देने के लिए मस्तक में एक योजना टकराई। क्यों न भगवान ऋषभदेव के समवसरण का श्रीविहार भारत में करवाया जाय?

बस योजना बनाना प्रारंभ हुआ, प्रचार-प्रसार हुआ। राजधानी दिल्ली के चाँदनी चौक ही नहीं, सारी नगरी को तोरण द्वारों के द्वारा सुसज्जित किया गया क्योंकि 2500 वर्षों के पश्चात् इस पृथ्वीतल पर भगवान ऋषभदेव का समवसरण अवतरित होने वाला है, आज तक किसी को समवसरण विहार एवं समवसरण देखने का सौभाग्य नहीं मिला। उसी समवसरण श्रीविहार का उद्घाटन समारोह भारत की राजधानी दिल्ली के चाँदनी चौक स्थित लालकिला मैदान से हुआ था। उस समय लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी थी, अनेक देशों से जनता आई और इस उद्घाटन के दृश्य को देखकर अपने जीवन को धन्य माना।

22 मार्च 1998 चैत्र कृष्णा नवमी के दिन भगवान ऋषभदेव समवसरण का श्रीविहार प्रारंभ हुआ, इसका उद्घाटन भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने स्वस्तिक बनाकर किया। उस समय इस समवसरण की पावन प्रेरिका गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी की जयध्वनि से आकाश मंडल गुंजायमान हो उठा था। उस समय जो धर्मवर्षा हुई, उसको लूटने वाले तो निश्चित ही धन्य हो गये, उनका जीवन सार्थक हो गया, इस अपूर्व कार्य के दर्शन से।

पूज्य माताजी श्री ज्ञानमती जी की सूझबूझ से सारे देश में भगवान ऋषभदेव के नाम की गूंज फैली तथा इस समवसरण के दर्शनादि करके पुण्यार्जन करने का अवसर सभी को प्राप्त हुआ। जिससे भगवान ऋषभदेव के नाम व जैन धर्म की

प्राचीनता एवं अहिंसा-शाकाहार का प्रचार-प्रसार बड़े जोर-शोर से हुआ।

इसके पश्चात् पूज्य माताजी की प्रेरणा से "भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन" का आयोजन हुआ जिसके माध्यम से जन-जन को यह जानकारी प्रदान की गई कि "भगवान महावीर" जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं, उनसे पूर्व भगवान ऋषभदेव आदि 23 तीर्थंकर हो चुके हैं। पुनः सन् 2001 में भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में इलाहाबाद-बनारस हाइवे पर नवीन भूमि क्रय करके "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली" नामक सुन्दर तीर्थ तथा भगवान महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक के अवसर पर भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर में नंद्यावर्त तीर्थ नामक बहुत सुन्दर तीर्थ का निर्माण हुआ है। इन तीर्थों के दर्शन करके जब भक्तगण मेरे पास आते हैं तो वहाँ की सुन्दरता का वर्णन करने के लिए उनके पास शब्द नहीं होते हैं।

इसके साथ ही पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से 99 करोड़ मुनियों की निर्वाणभूमि मांगीतुंगी तीर्थ पर भगवान ऋषभदेव की 108 फुट उत्तुंग प्रतिमा निर्माण का कार्य जोर-शोर से चल रहा है। विगत 2-3 वर्षों तक पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव के माध्यम से देशभर में भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित कार्यक्रम आयोजित कराए, उनकी प्रेरणा से मैंने भी कई नगरों में भगवान पार्श्वनाथ के छोटे-छोटे कार्यक्रम आयोजित कराए हैं।

इस प्रकार पूज्य माताजी द्वारा किये गये कार्यों की श्रृँखला बहुत लम्बी है और मेरे पास शब्दों की श्रृँखला छोटी सी है।

वास्तव में माताजी का जीवन कल्पवृक्षोपम हितकारक है, माताजी के असंख्य गुणों का वर्णन करने की सामर्थ्य मुझ अल्पज्ञा में नहीं है, माताजी तो गुणों की खानि हैं।

ऐसी पूज्य माताजी के आर्यिका दीक्षा के 50 वर्षों की पूर्णता पर सम्पूर्ण देश के भक्तों ने अप्रैल 2006 में उनका आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव अभूतपूर्व आयोजनों के साथ मनाया।

मैं अपनी मातृवत्सला माँ के प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हुए उनके चरणों में नतमस्तक होकर विनय प्रकट करते हुए उनके चिरकाल तक शुभाशीर्वाद के रहने की सदैव कामना करती हूँ, "यावन्निर्वाण सम्प्राप्ति" निर्वाण प्राप्तिपर्यंत मुझे आपके चरणों का आश्रय प्राप्त होता रहे।

भजन

रचयित्री – आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-पंखिड़ा.....

वंदना.....वंदना.....
वंदना करूँ मैं गणिनी ज्ञानमती की।
बीसवीं सदी की पहली बालसती की।।वंदना.....

इनके मात-पिता का, गुणानुवाद मैं करूँ।
इनकी जन्मभूमि का भी, साधुवाद मैं करूँ।।
मिलके आओ, मिलके गाओ, मिलके करो जी।
वन्दना चरण में करके, पुण्य भरो जी।।वंदना...।।1।।

इनके ज्ञान की प्रशंसा, सारी दुनिया करती है।
इनके नाम की प्रशंसा, पुस्तकों में मिलती है।।
मिलके आओ, मिलके गाओ, मिलके करो जी।
वंदना चरण में करके, पुण्य भरो जी।।वंदना....।।2।।

वीर के युग की ये, लेखिका पहली हैं।
ढाई सौ ग्रंथों की, लेखिका साध्वी हैं।।
मिलके आओ, मिलके गाओ, मिलके करो जी।
वंदना चरण में करके, पुण्य भरो जी।।वंदना....।।3।।

इनके वात्सल्य में, माँ की ममता भरी।
इनके सानिध्य में, मुझको समता मिली।।
मिलके आओ, मिलके गाओ, मिलके करो जी।
वंदना चरण में करके, पुण्य भरो जी।।वंदना....।।4।।

इनके तप त्याग में, लाभ लेते सभी।
''चन्दना'' भाग्य से, भक्ति करते सभी।।
मिलके आओ, मिलके गाओ, मिलके करो जी।
वंदना चरण में करके, पुण्य भरो जी।।वंदना....।।5।।

G G G G G

भजन

रचयित्री – आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-फूलों सा चेहरा तेरा.....

इस युग की माँ शारदे, तू धर्म की प्राण है।
ज्ञानमती नाम है, ज्ञान की तू खान है, चारित्र परिधान है।।टेक.।।
महावीर प्रभु के शासन में अब तक,
कोई भी नारी न ऐसी हुई।
साहित्य लेखन करने की शक्ति,
तुझमें न जाने कैसे हुई।।
शास्त्र पुराणों में, भक्ति विधानों में, तेरा प्रथम नाम है विश्व में-2
कलियुग की माँ भारती, पूनो का तू चांद है,
ज्ञानमती नाम है, ज्ञान की तू खान है, चारित्र परिधान है।।
इस युग.....।।1।।
तीर्थंकरों की जन्मभूमि का,
उत्थान माता तुमने किया।
हस्तिनापुरी में जंबूद्वीप को,
साकार माता तुमने किया।।
तीर्थ अयोध्या की, कीर्ति प्रसारित की, मस्तकाभिषेक आदिनाथ का हुआ-2
तू जग की वागीश्वरी, धरती का सम्मान है,
ज्ञानमती नाम है, ज्ञान की तू खान है, चारित्र परिधान है।।
इस युग.....।।2।।
गणिनी शिरोमणि तेरी तपस्या,
का लाभ इस वसुधा को मिला।
चारित्र चक्री गुरु के सदृश ही,
''चंदना'' इक पुष्प जग में खिला।
पुष्प महकता है, चाँद चमकता है, ज्ञानमती माता के रूप में-2
युग युग तू जीती रहे, हम सबके अरमान हैं,
ज्ञानमती नाम है, ज्ञान की तू खान है, चारित्र परिधान है।।
इस युग.....।।3।।

G G G G G